

CHLO



G. 4514
महाराष्ट्र विधानसभा

महाराष्ट्र
विधानसभा
का ह न

दिसम्बर-जनवरी १९६८
वर्ष ११ : अंक ६-७

एक प्रति : दो सौ पचास
वापक : दस हजार
प्राजीवन : दो सौ लक

महाराष्ट्र विधानसभा,
पो. बा. ८२,
पुणे

प्रकाशक :
मनमोहिनी
द्वारा सम्पादित

राजकमल मुद्रणालय अंक

संकेतिका

हमारी बात ५

राजकमल चौधरी : एक शक्ति

सुधीर चौधरी : मेरे माईजी १०

शम्भुनाथ मिश्र : राजकमल मेरा मित्र १६

कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह : मुझे मसीहों के बीच २०

अतिबल : शामिल नहीं रहना है साजिश में २५

विद्याभूषण श्रीरसिम : यथार्थ की खोज में २७

राजकमल चौधरी : स्रष्टांकन

राजीव सक्सेना : मिथक और यथार्थ ३४

हरदयाल : राजकमल का चलन-चोक् ४२

चन्द्रमौलि उपाध्याय : राजकमल की उभारार ४६

शालम श्रीरामसिंह : एक युगलु लेखक की डायरी ५३

केदारनाथ श्रववाल : मुक्तिप्रसंग ६२

परमानन्द श्रीवास्तव : श्रान्त-स्वीकृतियों से भरा वक्तव्य ६७

शिवकुटीराल वर्मा : सही माध्यम की तलाश ७०

धनश्याम शालम : मुक्तिप्रसंग का कीव ७६

विजयबहादुरसिंह : नया सृष्टि-संकल्प ८०

मलकानदा दासगुप्ता : श्रुतु-श्रुत गार में खण्डित नायिकाएं १००

सुरेन्द्र चौधरी : कहानी का चेहरा १०४

धर्मेन्द्र गुप्त : एक प्रणरोक्त कहानीकार ११३

मनुरेश : राजकमल चौधरी ने जपराग

परेश : मरी हुई मछली १२५

विश्वभरनाथ उपाध्याय : मछली मरी हुई १३०

भारतरत्न भार्गव : सामयिक विक्षुब्धतामक श्रमिन्वर्ति १३५

प्रसन्न श्रोमका : श्रमोय कथा का विवश सत्य १४५

जीवकाल भा : दुर्गन्धियों में किरणमाला की खोज १४८

वीरेन्द्र : मैथिली साहित्य में राजकमल : १५६

मुखपृष्ठ : प्रकाश पाटनी

श्री जगन्नाथ यादव द्वारा केषव प्रार्थन - सी, हाथीमाटा, अजमेर

मुद्रित एवं प्रकाश जैन, महारमा गांधी मार्ग,

अजमेर द्वारा प्रकाशित

३।

३।

सुधीर चौधरी : २३/५, गर्दनी बाग, पटना—२

शम्भुनाथ मिश्र : पत्र सूचना कार्यालय, भारत सरकार, चौक, वाराणसी

कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह : २६ रणा रोड पूर्व, पहली मंली, कलकत्ता—३३

अतिबल : निर्दिष्ट बड़ गाँव, सारीपुर, वाराणसी

विद्याभूषण श्रीरसिम : पत्र सूचना कार्यालय, भारत सरकार, आकाशवाणी

भवन, कलकत्ता—१

राजीव सक्सेना : दो-ई/२४, लाजपत नगर, नई दिल्ली १४

हरदयाल : बी १/२ महेश मार्ग, मोदीनगर (उ० प्र०)

चन्द्रमौलि उपाध्याय : १६३, सोहवतिया बाग, इलाहाबाद—६

शालम श्रीरामसिंह : श्रार्थ पुस्तक भवन, १८० चितरंजन एवेन्यू, कलकत्ता—७

केदारनाथ श्रववाल : एडवोकेट, वांता (उ० प्र०)

परमानन्द श्रीवास्तव : हिन्दी विभाग, सेन्ट एण्ड्रूस् चर्च कनिष्ठ, गोरखपुर (उ० प्र०)

शिवकुटीराल वर्मा : १ बाहबंद, इलाहाबाद—३

धनश्याम शालम : राजबाई हाउस, महारमा गाँधी

विजयबहादुरसिंह : जैन महाविद्यालय, नि

मलकानदा

अ- बी-

अ- बी-

अ- बी-

अ- बी-

अ- बी-

अ- बी-

अ- बी-

अ- बी-

अ- बी-

अ- बी-

अ- बी-

दिसम्बर-जनवरी '६८

६

ने०

अंक ८

सम्पादि-

• जगदीश गुप्त

• विजयदेव नारायण साही

• लक्ष्मीकान्त वर्मा द्वारा : श्रीराम वर्मा की कविताएँ •
कविताएँ : श्रीराम वर्मा

संस्करण :

कान्ता गारली • केशव कालीधर • गंगाप्रसाद विमल •
गिरधर राठी • गिरिराज किशोर • जगदीश गुप्त • नरेश मेहता •
पद्मधर त्रिपाठी • प्रमोद सिन्हा • प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय •
• प्रेमलता वर्मा • भगवत रावल • • • • •
किशोर • राधाकृष्ण सहाय • विपिन कुमार अग्रवाल • विष्णु
खरे • शलभ श्रीरामसिंह • शालि मेहरोत्रा • शिवकुटी लाल
वर्मा • सकलदीप सिंह • हरि ठाकुर तथा.....।

विशेष :

लक्ष्मीकान्त वर्मा • एक एक्स्ट्रा : कुछ घोषणाएँ और स्थितियाँ
देवेन्द्र गुप्त • एक दिवंगत कवि की पाँच कविताएँ
नेल्सना मिलन • नयी गुजराती कविता

• भूषण अग्रवाल • रवीन्द्रनाथ त्यागी • श्रीकान्त

नारायण त्याग • राजकान्त चौधरी....।

राजकमल चौधरी : एक व्यक्ति

सुधीर चौधरी

शम्भुनाथ मिश्र

कुमारेन्द्र पारसनार्थसिंह

अतिबल

विद्याभूषण श्रीरश्मि

लहर

दिसम्बर-जनवरी '६८

64514

Mahendra Mehta
Asst. Librarian
Saharsa College, Saharsa

मेरे माईजी

राजकमल चौधरी

सुधीर चौधरी

सन् १९४६। तेईस जनवरी। पिलाजी का जन्म-दिन। जनिवार या श्री-
गाहे का मौसम। स्कूलों की प्रातः कक्षाएँ मंदिर में हो लग रही थी।
एकाएक सभी कक्षाओं से जोरों का विगुल बज उठा। स्कूल की सी फ्रीट
ऊँची छत पर तिरगा लहरा हुआ या श्रीर ग्यारहवें वर्ग का एक छा-
त्रा पर से ही बिज्जा उठा। इतिहास-विज्ञान-वादा। श्रीर निचे से लड़कों ने
नारा लगाया: 'तिरगा' जिनदाबा 'नका' 'स्कूल' ने
एक श्रीर थाता या श्रीर दूसरी श्रीर सरकारी खजाना। छे-
लजाने पर तैनात सशस्त्र पुलिस। क्षणों में सिपाहियों ने 'म-
दोनों' जोर से बेर लिया श्रीर फूलराजा जलने लगे।
कर भाग निकले। मैं उस समय चतुर्थ वर्ग का छात्र।
पिलाजी उसी स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। वे फूलराजा पर बड़े माई
स्वर्गीय राजकमल चौधरी ही थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कर्मठ
कार्यकर्ता श्रीर शहर के सारे नवयुवक 'संघ' में उनके साथ थे,
श्रीर उनके विगुल की एक ही आवाज पर 'उ' देने को तैयार रहते थे।
सिर्फ इसी एक गटना के कारण ही नहीं, सैकड़ों इसी तरह की अन्य
घटनाओं के कारण ही मैं उन्हें देवता-सा आदर देता आया था।

१०

लहर

वैसे वे साधारण व्यक्ति थे। अपने मित्र श्री प्रभुनाथ मिश्र की उन्नति
लिखा श्री था: 'छोटी-छोटी चीजों के लिए मेरे मन में प्रयत्नक कमजोर्निया
है। मैंने बचन श्राने पर किसी दूसरे की महत्प्रता नहीं की है। सिर्फ
प्रयत्न ही स्वयं हमें देता है।' श्रीर यह स्वतन्त्रात्मिक एक
सब-साधारण व्यक्तित्व का ही लक्षण है। फिर भी वे प्रभावशाली व्यक्ति
थे। 'राजनीति' की तस्वीर देखकर, विभिन्न विषयों के साथ छुट्टा के
विभिन्न रूपों को देखकर, उन्हें जो प्रेरणा मिले, उसे अपने जीवन में,
प्रपने व्यक्तित्व में उन्होंने चित्रित करना चाहा। प्रलग-प्रलग व्यक्तियों
के साथ, प्रलग-प्रलग समूहों के साथ, उनके प्रलग-प्रलग रूप सामने
थे। साहित्यकारों के साथ वे साहित्यकार थे, परिवार के साथ परि-
वारिक, राजनीतिज्ञों के साथ राजनीतिज्ञ, चित्रकारों के साथ चित्रकार।
प्रत्यक्ष कोई भी यह नहीं महसूस कर पाता था कि राजकमल हमारे अपने
नहीं हैं।

पटना शहर के वे छात्र, वे श्रीर जहाँ दिनों अचानक वृद्ध
पर से फिर जाने के कारण मेरा बायाँ हाथ टूट गया था। मैं सड़र
अस्पताल, पटना में भर्ती हुआ श्रीर महीनों रहता पड़ा। वे प्रतिदिन मुझे
देखने आते श्रीर मुझे कभी कभी बुलाते भी ले जाया करते थे। वे
मुझे बेहद प्यार करते थे। परन्तु कभी वे ऐसा अनुभव होने देते की
कोशिश नहीं करते। मैं उन्हें किलनी धक्का करता हूँ, वे सिर्फ इसकी परीक्षा
ही लिया करते। हमारे पिलाजी धार्मिक व्यक्ति थे श्रीर जल-माल
की प्रथा के कट्टर अनुयायी। १९४२ में गया शहर से पाँच मील दूर हमारा
रन० सी० सी० का कैंप लगा था। यँगा उस समय बी० एन० कॉलेज, पटना
से गया कॉलेज चले गये थे श्रीर उस कैंप में, शहर से जलनी दूरी के बाव-
जूना जाया करते थे।

वे भाल करते होते तो वे घंटों प्रतीक्षा करते श्रीर खाना खिला कर
देते थे। इस तरह की असंख्य घटनाओं से हमने अनुभव किया था,
वे हैं।

उनकी इच्छा विरुद्ध कर डाला, तो वे बहुत दुःखी हुए श्रीर कतकला
चले गये। मात्र भारी सौतेली माँ की प्रसन्नता के ही लिए पिलाजी माई-
जी से श्रीर हम प्रत्यक्ष से दूर होते गये। श्रीर इसका माईजी पर
कुछो बुरा प्रभाव पड़ा था। 'रक्षा' 'महती' से रणगन्ध देकर वे कब नला
चले गये श्रीर बड़ी उन्मीले, 'नका' आरम्भ किया। उनके जाने के कुछ
ही दिनों के बाद पारिवारिक परेशानियों के कारण मैंने उन्हें 'चिन्ता', मैं

दिसम्बर-जनवरी '६८

११

आपके पास ही रहकर पढ़ना चाहता हूँ। उन्होंने उत्तर दिया: 'यह कलकत्ता शहर पञ्जीब जगह है। पित्तली और सोतेली माँ की धुणा बर्दाश्त कर सकते हैं, तो वहीं रहो। जीवन से लड़ सकने की सामर्थ्य हो, तो यहाँ चले आओ।' और मैं वहीं चला गया। पटना में जब वे सेक्रेटरी के भेजे, तब भी मैं उनके साथ ही रहता था और कॉमर्स कॉलेज का छात्र था। वे हमेशा आसामाज्य जीवन बिताते रहे। 'बालाजू' (पटना) होटल में बैठकर वे शराब पी ले, तब, परन्तु जब तक शराब का नशा टूट नहीं जाता, वे घर लौट कर नहीं आते। वे मामी को बेहद प्यार करते थे। रात बजे ही सही, लेकिन वे घर लौटते भयंकर, चाहे उन्हें चौरंगी से बारह मील दूर पूर्व पुलिसरी पेंडल ही क्यों न आना पड़े। बाहर भले ही पेट भर जाए, पर जब तक मामी के हाथ का बना ख़ा-सूखा वे नहीं खाते, उन्हें सन्तोष नहीं होता। खाना हमेशा हम लोग साथ ही खाते। और खाते समय सिर्फ पारिवारिक बातें होती। तब किया जाता कि कलकत्ता के 'इलिस' माछ और मिथिला के 'हिलसा' माछ के नामों में क्या अन्तर है। तब किया जाता कि कल ऑफिस से लौटते 'यू मार्केट' से मामी के लिए चनाचूर ज़रूर लाना है। तब किया जाता कि लाला ने सरसों का तेल गड़बड़ दे दिया है और उसे ऑफिस जाते समय ही लौटाते जाना है। और तब किया जाता कि इस रविवार को हम लोग 'बोटनिकल गार्डन' घूमने जाएंगे और लौटते समय 'मोकाभो' में खाना लेंगे। लेकिन मुंबई होते ही वे सब कुछ भूल जाते। न चनाचूर आता और न हम लोग गार्डन ही घूम पाते। उनका कहीं न कहीं आवश्यक कार्य आ जाता और किसी दोस्त के साथ खिसक जाते। रात देर से घर लौटने पर वे माछ से नित्य नया कहाना बनाते, नई कानियाँ गढ़ते। मामी को और मुझे कहानियाँ अच्छी लगती थीं। मिथिलों मुट्ठुगुहाटों में बदल जाता। 'दिवा' के जन्म के बाद उ पड़ेगा। प्रे परिवर्तन आया। उन्होंने 'सारिका' मग्रेल '६३' में दिवा ५५ कहाँनी 'भयाक्रान्त' में लिखा है: 'वासन्ती के लिए सला कोई चीख लाया हो, वासन्ती को याद नहीं। चारों ओर में कभी एक बार वासन्ती सत्यनारायण के साथ बाहर निकला है। साड़ियाँ, ब्लाउज-सीस, सत्यनारायण के लिए पेट-कमीज के कपड़े, बूड़ियाँ और जूता पैसे रहे, तो कोई हल्का-सा चपरा लेती है। सत्यनारायण अपनी इच्छा से कोई चीख नहीं लाता है—पिन तक नहीं। मगर सत्यनारायण को रत छोटी-सी बेबी ने नमल बना दिया है—कोमल और

लहर

१२। मेरे भाईजी: सुधीर चौधरी

ग के किसी कोने में लहेमग।
 बार हमसे ही जीवन के रहस्य - सहन पर बहस छिड़ गयी और मैंने
 नि एजामलिटी की आलोचना की। उन्होंने कहा: 'मनुष्य तीन
 के होते हैं। एक वे हैं, जो समाज के, युग के पीछे पीछे चलते
 हैं। दूसरे वे हैं, जो समाज के, युग के साथ चलते हैं। और तीसरे वे हैं, जो
 समाज के, युग के आगे चलते हैं। तीसरे प्रकार के व्यक्ति ही मुज्जता
 कहलाते हैं। समाज का निर्माण करते हैं। साहित्य के निर्माण करते
 हैं।' वे अपने को इसी तीसरे प्रकार के व्यक्ति समझते। उनकी प्रतिभा
 के हम कायल थे। उनमें एक बड़ी खूबी थी। कोई कहानी या को-
 या कुछ भी लिखने के बाद उसे कभी नहीं डुहराते। जब किसी पत्रिका से
 कहानी की मांग आती, एक घण्टे के अन्दर कहानी तैयार। एक बार तो
 मैंने देखा कि 'अनामिका' की ओर से कवि-गोष्ठी का आयोजन किया गया
 था। रविवार या और तीन बजे जब सोकर उठे, तो उन्हें स्मरण आया
 कि उन्हें गोष्ठी में भाग लेना होगा। और दाम में बैठे ही बैठे
 उन्होंने कविता लिख डाली। उस कविता की बहुत ही प्रशंसा हुई।
 कलकत्ता में ही 'ज्ञानोदय' और 'रागरंग' छोड़ने के बाद एकाएक उन्हें पैसे
 कमाल की छुट सवार हुई। मामी कलकत्ता से गाँव आ गई थी और मैं
 भी 'कॉलेज-होस्टल' में रहने लगा था। और पैसों के पीछे वे पगल हो
 गये। कई सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये और काफ़ी पैसा कमाया। कुछ
 दिनों तक इसी कारण वे साहित्य की दुनिया से भी अलग रहे। बाद में
 मामी के आ जाने के बाद फिर लिखना-पढ़ना शुरू हुआ और स्थिति
 सम्बली। 'रागरंग' उनकी कल्पना थी और 'रागरंग' के प्रकाशन से वे
 अत्यधिक प्रसन्न हुए थे। 'रागरंग'—२ में ही उनकी सबसे अच्छी कहानी
 'नी सम्म' 'बसन्तों' में '२' में ही उनकी सबसे अच्छी कहानी
 'मानसिक स्थिति' बिगड़ी। कई मल्ल लोगों ने उनके जीवन में प्रवेश
 मैंने काफ़ी समय-बुझा कर उन्हें कलकत्ता छोड़ने पर राजी
 के नवादा आ गये। नवादा कुछ दिन रह कर वे पटना आ
 गये और 'भा' में श्री शिवचन्द्र शर्मा के आग्रह पर नौकरी करने लगे।
 नौकरी उन्हें कभी पसन्द नहीं आई और फिर वे स्वतन्त्र रूप से लिखने-
 ले लगे। १९६५ ईस्वी में ही उन्हें पेट-दर्द हुआ, और वे लम्बी बीमारी
 चपेट में आ गये। २२ ५५ संवत् की मेया को मैं और मेया
 हमिल उपाध्याय जबरदस्तरास्पताल ले आये। तब हमारे पित्तली
 हमारे साथ अस्पताल नहीं आये थे। रात को दो बजे तक प्रार्थना

१३

सब्र-जनवरी '६८

शान्भुनाथ मिश्र

दुःख का सहसास कुछ कम होने के बाद, कई मित्रों ने और स्वयं मेरे अन्तर्मन ने कहा कि जब राजकमल-स्युति-भंग निकाल रही हैं, तो राजकमल के नजदीकी होने के नाते सहयोग अवश्य करना चाहिए, ताकि कम से कम उसकी स्युति-रक्षा अवश्य हो सके ।

फिर भी, जैसे 'दण्ड' और 'नियं...' में संस्मरण किस्म की दा' रचनाएँ किसी प्रकार लिख भोजी। 'धुत्ता' को राजकमल के पत्र भोज दिये और 'आधुनिक' को एक

मैंने सोचा, जो लोग इस प्रकार के सुभाव दे रहे हैं, उनमें से अधिकतर राजकमल और उसके साहित्य से परिचित हैं—फिर वे स्वयं राजकमल पर कुछ भी न लिख कर उस व्यक्ति की भावनाओं को ठेस क्यों पहुँचा रहे हैं, जिससे आपने भरसक प्रच्छा या दुरा, जैसा भी मही, कुछ तो लिखा। मेरे सामने शलकनन्दा दासगुप्ता और शाशि-प्रभा शान्नी और मनमोहिनी के लेख आये। वे क्यों नहीं तटस्थ हो पायीं ? राजकमल का प्रभाव चन्द्रमौल उपाध्याय आमुकता चन्द्र शर्मा ही 'अन्तर्दृष्टि' होने से बच पाये क्या ? फिर, मुझ पर ही ये सारे आरोप क्यों ? क्या इसलिए कि राजकमल के ही मेरे सारे आशय क्या ? क्या इसलिए कि उससे मैंने 'राजकमल' नामक पुस्तक लिखी है ? क्या इसलिए कि उसकी मेरे 'वाचक सम्बन्ध' थे ? क्या इसलिए कि उसकी मौलिक भावना सकारण मेरे लिए अब तक नामुमकिन रहा है ? क्या इसलिए कि राजकमल के बाद उसके बजाय मैंने 'आत्म-चरित्र' लिखा है ? क्या इसलिए कि उसकी परिचार की ?

मुझे लगता है मैं राजकमल^{संग}के प्रति कभी तत्स्य^{ही} हो पाऊँगा। तत्स्यता से समीक्षात्मक लेख शायद वे ही

लोग लिख सकेंगे, जिनका राजकमल से परिचय तो था, भगद, जो अपने को उससे 'घट्टेचट्ट' महसूस नहीं करते थे। शीघ्र, 'पेशेवर भालोचक' ही लिख सकें (और लिख भी रहे हैं), जिनके लिए व्यक्तिगत सम्बन्ध नाम की कोई चीज कहीं भाड़े नहीं घाली। मैं शायद उसके 'कुतिल्य' पर या 'राज' मल : एक साहित्यिक अध्ययन' किस्म की चीज 'ख पाऊँ—क्योंकि, हम दोनों साहित्यिक चर्चा नहीं के बराबर करते थे (हालाँकि, एक-दूसरे के लिए रचनाओं पर व्यक्तिगत राय का बड़ा महत्व था); क्योंकि मैं 'राजकमल : 'एक लेखक' के बजाय 'राजकमल : एक-व्यक्ति' को अधिक जानता था; क्योंकि, उसकी मौत से मेरा एक अभिन्न मित्र हमेशा के लिए बिछड़ गया है। 'साहित्य' की कितनी क्षति होगी, यह साहित्यकार जानें। सोचता हूँ, राजकमल पर कुछ भी लिखना ठीक न होगा, क्योंकि लोग अब संस्मरण की अपेक्षा 'समीक्षात्मक अध्ययन' पढ़ना ज्यादा पसन्द करते हैं; क्योंकि, लोगों को संस्मरण में संस्मरण-लेखक के आत्म-प्रचार की बूँ का आभास होता है। मुद्राराक्षस ने अच्छा किया कि अब तक उसने राजकमल पर कुछ भी कहीं नहीं लिखा। वह कहता है (और, ठीक ही कहता है) : 'अजीब बात है कि इतने सारे लेखकों ने राजकमल की मौत पर लिखा। मैं अभी तक एक लफ़्फ़ भी नहीं लिख पाया। शायद सड़ गया भी नहीं। — मेरे मौत के 'अजीब 'हॉल' मेरा पीछा करता रहा है। शायद जो सांख्य राजकमल की पेशियों में बँसकर आदमबोर बन गई थी, वही दिखाने देती है मुझे। सोते में नहीं, जागते में। सामना या पीछा करती हुई। कहते हैं, कभी किसी का पीछा फिर था शिव के लगातार बढ़ते जाते लिंग ने। कुछ भी सूर्य। सिंरिज को।'

राजकमल की रचनाओं का 'पोस -म' मुझसे नहीं हो सकेगा। अगहिन शक्ति शक्ति और मेरी स्थिति में फँके ही क्या है ? राजकमल का अभाव मुझे खलता है, और अबसर उसकी याद उमरती है :

(राजकमल चौधरी की मरणोत्तर याद में)

शून्य

सूरज नहीं है
अंधरा भी

शाम की परछाईयाँ चुप
कहीं कहीं भी
गन्ध नहीं

किनारे
बाल की सतह पर
कोई परछाई नहीं उगती.....

शम्भुनाथ मिश्र

सुदर्भ मसीहों के बीच ल. थॉरिस पड़ी लाश

कुमारेंद्र पारसनाथसिंह

श्रव, जब राजकमल नहीं रह गया है और उसे लेकर कुछ कहने की अतिवायता मेरे लिए एक परिचित 'नाम' और 'गांव' के सिवा और कुछ नहीं था। वर्यो पहले मेरे सामने—यहीं कलकत्ते में—एक हमउम्र को सामने लाकर जो नाम बताया गया था, वह यही नाम था। और फिर, ऐसे कई इत्फाक हुए जब यह नाम मेरे सामने अलग-अलग वर्णों में उभरता गया और आज सब मिलाकर मेरी आँखों के सामने एक गाँव खड़ा है, जिसमें कई-कई गलियाँ और कई-कई चौराहे हैं। कई-कई तरह के लोग और कई-कई तरह की ज़ुबानें हैं; कहीं तो सब कुछ है, मगर खुद राजकमल ही नहीं है। राजकमल के पास आने के पहले ही परिचय कराने वाले व्यक्ति ने कहा था : 'कुमारेंद्र, मैं तुम्हें एक आदमी से मिलाता'। 'र' खयाल रखना, बहुत घटिया आदमी है।'

परिचय के बाद राजकमल मेरे सामने खड़ा रहा। ठीक-ठीक कहीं तो एक निहायत शरीर व्यक्ति के रूप में। फिर हम लोग बाह्य भा गये और साध-साध करीब घण्टे भर पैदल चलते रहे। रास्ते में ही अचानक कौं ठुकान से शायद चाय भी पी ली गयी थी। इसी समय राजकमल कुछ बातों और (बहुते) प्रश्नों के माध्यम से अपना परिचय अपनी ज़ुबानों दे चुका था। उतने ही समय में मेरे श्रवण एक चिड़न्मी थी और मैं उससे नफरत करने लगा था।

फिर हमारा निना वर्यो तक नहीं हुआ। दूर से ही अपने विरुद्ध उठती हुई कई-कई आवाजें सुनाता रहा, जिनमें कभी-कभार राजकमल की भी आवाजें

शामिल कर ली जाती थी। बीच-बचाव करने वाला कोई नहीं था, निना हमारी रचनाओं के। मेरी रचनाएँ मुझे उसके करीब कहीं तक ले जा चुकी थीं, यह तो नहीं कह सकता; मगर अपनी रचनाओं के बल पर वह मेरे बहुत करीब आ चुका था। उससे मेरी असहमति प्रकट थी, मगर उस हद तक नहीं, कि उसकी मर्त्तना करने लग जाता। मैं उसे अपने परिचय के कुछ बहुत ही उपेक्षापूर्ण प्रश्नों की एक अतिवायता के रूप में देखता रहा। और फिर ऐसा कभी नहीं हुआ, कि उसे नापसन्द करने लगे। सब तो यह होता कि कहीं जब-जब मैंने उसे अपने नज़र से देखा, यह मुझे नेह्रू पसन्द आया। दावजुद लोगों के यह कहने के कि राजकमल झूठा है, बदचलन यकीन करने काविल नहीं, कर्ज करता है और शराब पीता है, उसके लिए कोई लड़की नहीं, बहू और माँ नहीं। और उसके लिए औरत है और पेशाचिक ग्रहण के सिवा और कुछ नहीं।

लोग कहते हैं तो कहें कि वे साफ हैं। मगर मैं कैसे कहूँ कि देह में मेल नहीं होता। राजकमल जब-जब मेरे सामने और मेरे साथ रहा, उसे मैंने फिर कभी भी कुछ ऐसा देखा नहीं पाया। एक निहायत मायूस बच्चे की तरह पास बैठ जाता, काँपों पीता। लेखक को लेकर भी जब (मुश्किल से दो-तीन बार) बातें हुईं, मैंने उसे आहिस्ते-आहिस्ते ही बोलते पाया। मेरे कुछ ऐतराज करने या सुझाव देने पर हर बार यही कहता : 'अच्छा भैया, इस बार मैं आपको सन्तोष दूँगा और काफी सुधार दूँगा।' जबकि हमेशा मेरी इच्छा यही रही, कि वह जो और जैसा लिखता है, लिखता जाये—हो सके तो और निर्मोक्त होकर लिखे। और मेरी शिकायत आज उससे कोई हो सकती है। यही कि आज तक वह उतना निर्मोक्त नहीं हो सका (कारणों में निम्नसब) और मलय आदि भी शामिल हैं, जिनका मैं चाहता था। हालाँकि वह उन लोगों से बहुत ज्यादा निराश और नातक था, जो समय-समय पर निर्मोक्तता और नैतिकता का दावा करते के लिए आगे बढ़के भी बेधर्मी करते रहते हैं। राजकमल बेधर्म नहीं था। और जहाँ दोस्त था, सबकुछ दोस्त था। बहुत कम लोगों को यह पता होगा, कि वह एक बहुत अच्छा (मगर दुर्बल और असहाय) पति था। और जहाँ वह एक बाप था, उसका हृदय उसकी बेहेशी में भी अपनी बटिक के लिए तड़पता रहता था और तड़पता इसलिए रहता था, कि अपनी बटिका के लिए तड़पता भी नहीं कर पाता था, जितना वह परेशानियों से घिरे रहता पर भी हम कर लेते हैं। उसके श्रवण की ममत्व हमसे से किसी से कम नहीं।

बोतलों की किस्सागोई और हाँपती मछलियाँ :

राजकमल के सम्बन्ध में लोगों के कई-कई सम्मरण होंगे और वे सब के सब कुछ रोमांचित होने के कारण बेहद दिलचस्प भी होंगे। जीवन भर वह उपेक्षा और प्रभाव को भेलता रहा, जीने के लिए ही सही, मगर जीने से ज्यादा मरने का श्रमपास करता रहा और ऐसा हुआ भी, कि उसका जीवन प्रायः मौत के साथे में ही बीता। उसे अपने अन्त का पता था, फिर भी उसको तारीफ़ यही थी, कि उस अन्त के आतंक को भेलते हुए भी एक नयी शुरुआत कर लेने में लगा रहा। आखिरी दिनों में 'भुक्ति-प्रसांग' की रचना स्वीकृत समाज के अस्वीकृत जीवन के पक्ष में एक तीव्री प्रतिक्रिया थी जो पूरी सफलता के साथ इसलिए नहीं व्यक्त हो सकी कि राजकमल का खून तब बहुत ठंडा पड़ गया था। यह असफलता रचनाकार की नहीं जितनी उसके शरीर की है। जहाँ बोतलों की सिम्फनी चलती रही है, वहाँ एक दूसरे के पीछे मागती-दीवती मछलियाँ भी रहती हैं और जब वे हाँपती रहती हैं, तब भी रोकी या पकड़ी जा सकती हैं। जिस समाज का ऐसी स्थिति को पैदा करने में कोई हाथ नहीं, उसका यह भी हक नहीं, कि वह इसकी सामान्य गति में दखल दे। मगर अपने ऊपर किसी बात की कोई जिम्मेदारी लिये बिना वह हमेशा दखल देने के लिए आगे आता है और इसीलिए इसे अपनी विद्रुताओं को देखने के लिए राजकमल जैसा कोई आईना भी मिल जाता है। इसमें आईने का कोई दोष ही होता और जो कोई दोष हुआ भी तो यही कि वह उतना साफ नहीं हुआ कि उसमें देखने वालों को अपना चेहरा खूब साफ नजर आये। फिर भी वह आईना जो राजकमल है, इतना अन्धा नहीं, कि लोग उससे निश्चिन्त हो जायें; उसमें कम से कम इतनी चमक तो है ही कि उन्हें उसमें अपनी सूरत नजर आने लगी है और वे इस चमक के आभासा हैं।

तीसरे सच के बाद का एक झूठ

हमारी दुनिया में स्वीकृत होने वाला पहला सच यह था कि बालभौतिक कवि नहीं, एक डाकू या हथियार था। उसके बहुत बाद हमारे सामने आने वाला दूसरा सच यह था कि कालिदास या कि तुलसीदास के बराबर एय्याश और दरवाजी थे। तीसरा सच निराला को लेना था। वह यह कि निराला आदमी ही नहीं थे, कवि क्या होते ? और चौथा सच यह कि निराला दो गयी श्रद्धांजलि का श्रम मात्र बाँटने और उनके नाम पर जितनी योजनाएँ प्रस्तावित हुई, उन्हें खटाई में डाल दिया गया। यानी लोगों में समय

२२। लावारिस लाश : भुवनेश्वर पारसनाथ सिंह

सहृद

रहते ही श्रम-तृप्त आ गये और वे अन्य जल्दी और महत्वपूर्ण कामों में लग गये। विगत और प्रमी चल रही कुछ मंदियों के दौरान हमारे सामने ये तीन सच अचरित रूप। प्रथम एक झूठ सिर उठाने की कोशिश में है। जैसे नलिन जी चुक गये, राजकमल भी आहिस्ते-आहिस्ते भगवत के नंगे में मर गया। नलिन जी की किसी ने हत्या नहीं की थी, न ही राजकमल ने आत्महत्या की। और राजकमल ने जो आत्महत्या कर डाली तो उसके लिए कोई न कोई कारण तो होगा। मगर राजकमल के आत्महत्या नहीं की क्योंकि उसके लिए कोई कारण नहीं मिलता और न ही किसी भी जिम्मेदारी कबूल करने के लिए आगे आता है। यह सब झूठ है। सच यह है, कि नलिन जी जैसे चुक गये, राजकमल भी एक दिन मर गया क्योंकि वह जीने के बिल्कुल काबिल नहीं था।

जोहराबाई कहती थी :

जोहराबाई का आप सबों ने नाम तो सुना होगा। और वो नहीं सुना हो, प्रथम मालूम कर लीजिये। जोहराबाई अपने नगर की एक मशहूर तबायक हैं। तबायकों के साथ शरीर के सौंदर्य का जो एक अपवाद लगा रहता है, वह उनके साथ नहीं है। हाँ, बिल्कुल नहीं है। उनकी शक्ति का कारण उनकी कला है। उनकी कोठी में कई-कई कन्याएँ हैं, कला-साधना में रत या पारंगत। कला-प्रेमियों की एक भीड़ जोहराबाई का अन्दाज देखने के लिए लगी रहती है। जो कुछ भी उनके मुँह से निकलता है, वह कला का सही प्रतिमान हो जाता है। लोग जाते हैं और झुलझुल होकर वापस चले आते हैं। वही जोहराबाई, उन्हें यों..... देखिये ना ! आप कल के कुलीनों की बात क्या की जाय ? उनका बहू-बेटियाँ..... अर्द्धा माफ़ करे !! और हाथ सिर पर ऐसे मारती हैं जैसे कोई बहुत बड़ा गम हो और वह बैठे-बैठे वहीं उसमें गर्जो हो गयी हों। वैसे ही 'दिनमान' कहता है और बहुत जगानि के साथ कहता है..... कि राजकमल या कि राजकमल का साहित्य..... 'दिनमान' कहता है कि वह राजकमल का हमसंग या कि हमसफ़र नहीं है, समकालीन भी नहीं है। जिस समाज के दामन का दाग था राजकमल, उस दामन से 'दिनमान' का कोई सन्दर्भ नहीं है। वह एक 'पत्र' या कि 'सम्पर्क' है जिसके मुँह से अपनी कम, अलाना दूसरों की या पढ़ के पीछे छिपे किसी सूत्रधार की बात निकलती है। और तब मेरे सामने एक नहीं, दो-दो जोहराबाई आ जाती हैं और मैं समझ नहीं पाता कि ठीक फरमानेवासी

दिसम्बर-जनवरी '६८

२३

कीन जोहराबाई हैं : वह या यह । फिर देखता हूँ, कि वह लाण जो राजकमल है, बिलकुल लावारिस पड़ी है और लोग भगल-बगल से अपना-अपना दामन बचाये, बड़ी सांधानी से गुजरते जा रहे हैं ।

मगर इस पर भी मुझे कोई भावचय नहीं होता । साहित्य में जब साहित्येतर या कुछ बहुत ही घटिया किस्म की प्रवृत्तियों का प्रवेश हो जाता है और वे बुझुं भा संस्कारों में प्रवेश करती हैं, तत्कालीनता की तत्त्वों से सहारा पाकर अपने जमाने के प्रतिनिधित्व के लिए साहित्यिकता का दावा करने के लिए आगे आती हैं तो मानकर अपने समय के अहम सवाल को तरह देने में लगे थे, और कुछ सुविधाएँ पाकर या पाने की आशा में वृत्तिवादी कानिह पर पर्व डाल रहे थे, उनसे आज इतना भी नहीं हो रहा है, कि राजकमल ने जितना देखा और स्वीकार किया, कम-से-उतने को भी देखें और स्वीकार करें । राजकमल उनके लिए, उनकी समझ में कल और कुछ नहीं तो, कम-से-कम एक दृष्टिकार तो था ही; मगर आज वह कहीं नहीं, कुछ भी नहीं है । उन्हें अपने सतीत को रक्षा के लिए आज यह दुहाई देनी पड़ रही है कि राजकमल से उनका कोई सम्पर्क नहीं था । उन्हें राजकमल से लाल या तमाचा खाने की आशंका नहीं थी । इसलिए उन्होंने उसे अपने पास बुलाने की कोशिश की । फिर भी, राजकमल ने जो एक बहुत बुरी काम किया, वह उनकी मुश्किल पर धृक्ता था । और मुझे सबसे ज्यादा संतोष इसी बात से है, कि उसने इस काम की खुशामत बहुत दिलेरी के साथ की ।

राजकमल मेरा दोस्त नहीं था, मगर मेरे बहुत निकट था । और जो कुछ भी उसने किया, जैसे किया, वह सब मेरी समझ से बहुत जरूरी था । उन कानिह का एक पक्ष बहुत ही सही था, जिससे उन्होंने को शक्ति हमसे से बहुतों में नहीं है; ऊबड़-खाबड़ जमाने पर चलने और नदी-नाले तैरने की बात तो बहुत दूर की है ।

शामिल नहीं रहता है साजिश में

अतिवल

आज राजकमल नहीं है ।

कल या भगले पल कोई और नहीं हो सकता है ।

होने न होने का यह क्रम अनौपचारिक काल से चला आ रहा है । पर इससे अन्तर क्या पड़ता है ? क्या पड़ा है ? सूरज कैसे ही रोख जाता है, चला जाता है ।

अब भी वही ही काली-काली रातें छाया में, पलों में घुलती जाती हैं ।

वस, जाने वाले की एक याद कसकती रह जाती है । उस सूनी का एक नाम :

राजकमल !

२० जून '६७—आजि मांजी का बाल सूना हो जाने के भगले दिन ! पटना का एक विशाल कक्ष कुछ नामी-गिरामी साहित्यिक नेताओं का जमघट !

उद्देश्य : राजकमल के कृत्यों का बखान, 'अज्ञानलि' जैसे पारम्परिक शब्द को

कक्ष में लगे महान लेखकों की किमों की बगल में चिपका देना ।

सजे-बने चेहरों पर जबरन मुस्कानें, भावों का यदा-कदा छितरा जाना । और मैं मुस्कान की एक लास किस्म को पी जाता हूँ । लोग

क्या कहेंगे ? कहेंगे नहीं...सोचेंगे ?

संशय की मुद्रा में 'एक' अपने गले की खराब मिटाने लगे । 'समझने वाले

कुछ भी समझें, मगर या राजकमल जीवत का...' और अपने माया का ले

पूणहुति देते देते ने अपनी स्थिति को बोट भांगने वालों की-सी दशा को ले

गये । इस बीच उन्होंने अपने और राजकमल के सम्बन्धों की बखिया उखेड़

डाली । कब-कब दस घंटे के लिए राजकमल को खिलाये थे, कहाँ स्नेहाल

पिलाई थी...और यदि यह है, तो नदित लय न होता कि राजकमल के पिता

स्व० वं० मधुसूदन चौधरी थे, तो सम्भव है, वे महानुभाव श्री मीरत, के दोरे

में अपने भाप की राजकमल का पिता घोषित कर डालते । और यदि मेरे

जानकारी गलत नहीं तो उन सज्जन से राजकमल का यदा-कदा का दुआ-सलाम भर का नाता था।

चन्द झाकाहारियों (दल-विहीन यथार्थ की विवशता) ने राजकमल को न्यायवादी कहा, तो कुछ ने दबी जुबान से उसके मांसहारी जीवन का खाना खोल दिया।

माधण का दौर... खाली नहीं। की ऊब उन्हें घड़ी की सुइयों में डुबोती रही। मेरे मेहमान पाव स... र।

मोर कि...

नईती हुई चर्चा... शोक-सभाग...? शिखरिडियों के जन्म के समाचार। और इन सबसे दूर तोलू माँ की आँखों से बहती धारा का धर्म समझने की प्रसमयता में सहभा-सहमा। प्रबोध मुला की प्रतीक्षा कि कब काका (राजकमल के बच्चे उसे काका ही कहते थे) लौट कर आएंगे। और नटखट दिव्या पर हुंदेव द्वारा प्रसमय लाद दी गयी गम्भीरता। स्मृतियों का एक झट्ट क्रम... एक पड़ाव....

‘पुस्तक में है हमारी दास्ताने खिन्दी।

इक सुकूने दिल की खातिर उम्र भर तड़ा किये।’

भाकाशवाणी पटना से श्रद्धांजलि....! उद्बोधक का स्वर जाना-मा लगता है

....ही, गणेश गुंजन।

एक पकी दोपहरी—नवल स्टूडियो। गाढ़े गुलाबी रंग के कुर्ते की जेब से ‘पानी इधर की संगिनी चिलम निकाल ली थी राजकमल ने।

‘...गणेश से कहा गया था। गणेश चुप रह गया था। तीनों दृष्टियाँ एक दूसरे के चेहरे के प्रश्नों में उलझी थीं।

‘हाँ, तुम्हें कौन पीड़ा है जो गुंजा पियोगे?’ राजकमल ने चेहरे पर छाये हुए के हटते ही गणेश को प्रजीब तरह से पूरा था, एक प्रजीब छटपटाहट.... एक चिरपरिचित नकार अपनी आँखों में धोतते हुए। और हम दोनों एक दूसरे को ताकते रह गये थे। इक सुकूने दिल की खातिर....

राजकमल शराबी था, फरेबी था, गैरखिन्मेदार, बेधमागामी....जाने क्या क्या था। उसने स्वयं कभी नहीं कहा कि वह क्या नहीं है, वह क्या है।

सबके लिए वह छोड़ गया है प्रश्न।

मुक्तिप्राप्त के पुष्प... रफरते हैं।

‘आदमी को तोड़ती नहीं लोकतांत्रिक पद्धतियाँ, केवल पेट के बल उसे भुका देती हैं / धीरे धीरे भ्रष्टाचिन् / धीरे धीरे ‘भुंग’ संक बना लेने के लिए / उसे शिष्ट राजमक्त देण्डे भी नागरिक बना लेती हैं।

२१ नवम्बर १९६६ सावित्रा में : प्रतिबल लहर

आदमी को इस लोकतंत्रो संसार से भ्रान्त हो जाना चाहिए / चले जाना चाहिए कस्सियों गंजाखोर साधुओं, निखमंगों, प्रमीमन्वी रडियों की काली और प्रन्वी दुनिया में, मसानों में।

प्रपञ्चाली लायों मोचकर खाते रहना श्रेयस्कर है / जीवित पड़ोसियों को खा जावे

से / हम लोगों को भ्रव शामिल नहीं रहना है / इस वरती से आदमी को हमेशा के लिए खलम के देने की सावित्रा में। • •

राजकमल : यथार्थ की खोज में

मटकता इन्सान

विद्याभूषण श्रीरश्मि

कहते हैं, मृत्यु सभी विवादों को समाप्त कर देती है। पर राजकमल के संदर्भ में ऐसा नहीं हुआ। ऐसा लगा, जैसे लोग उसके मरने का इन्तजार ही कर रहे थे। इधर उसने आँख मूँदी और उधर लोगों ने, विशेषकर उसके निकट-वर्ती मित्रों ने, अपने मन की मड़ास निकालनी शुरू कर दी। किसी ने कहा : ‘प्रच्छा हुआ, साला मर गया। पूरे न्यू राइटिंग को करस्ट कर रहा था तो किसी ने कहा : ‘कौन कहता है, राजकमल में प्रतिभा थी? वह साला गो फ्रॉड था, फ्रॉड।’ कुछ ऐसे लोग भी जरूर सामने आये, जिन्होंने राजकमल की ईमानदारी स्वीकार की। पर उसे ‘प्रच्छा आदमी’ कहने वाले के जाल गुप्त जैसे सोबे-सादे इन्सान कम है। प्रच्छा है वह। तन्मन्दीपसिंह ने उसी एक साथ ही झूठा, भ्रष्ट, कामुक, भ्रष्ट, जाली, नकलची, कुष्ठित, कुटिल, समझौतापसल, शराबी, भ्रष्टाचारी, बेधमागामी, सब-कुछ कह डाला। शिवचन्द्र शर्मा ने उसे ‘अपनी पीढ़ी का धनुष-टंकार (टिन्सल) बलाया और नागाधुन ने प्यार से ‘दुष्ट’ कहते हुए ‘बड़ा ही विचित्र शर्णी’। उसके प्रति प्रिय मित्र चन्द्रमौलि उपाध्याय ने ‘विक्षिप्त और वाम के मध्य की गम्भीर नारकीयता का कलाकार’ कह कर... श्रद्धांजलि प्रेषित की।

राजकमल की मातमपुत्री भ्रम, व्यास, स का दौर प्राथमिक माना और प्रोमप्रकाश दीपक ने उसकी मातमपुत्र्यता सबसे बड़ा प्रपञ्च बलाकर अपने समाजवाद की रक्षा की। कुछ नौसिखिया कॉमेडर उसे ‘विरासत नाम का मोटा

कहकर भी गो उड़वाने से भी बाज न पाये। हाँ, श्रजितकुमार ने श्रवणय ऐसा कुछ कहा, 'हरके से टाला नहीं' जा सकता। उन्होंने कहा—'..... हय श्रवने श्रपको इस खयाल से बचा न पाएँगे कि भकाल मृत्यु के कारण वह द्वेलक, जो श्रवने मन में भीतर ही भीतर, कहीं निराला, भुबनेश्वर या 'उग्र' बनने का सपना संजोये हुए था, मनुष्य 'एक रसीन व्यक्तित्व' बन कर रह गया।' वास्तव में, क्या था राजकभूषण? क्या चाहता था वह? जहाँ तक मैं समझता हूँ, वह एक साधारण नौन था, पर भ्रमाधारण बनने की उसकी हार्दिक आकांक्षा थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए, भ्रमाधारणत्व का मार्ग पाने के लिए, वह गलत-सही गली-कुर्वा में जीबन भर भटकता फिरा। शशियमा शारनो के नाम श्रवने १८ जुलाई, १९५८ के पत्र में उससे लिखा था :

वस, बहुत मानासक उलझनों और दार्शनिक विश्लिष्टताओं में पड़ गया हूँ। मानव-जीवन का उद्देश्य क्या है? सौंदर्य-बोध की भावना का मूल स्रोत कहां है? भौतिक शास्त्र के सूत्रों में अन्तर्निहित महासत्य के दर्शन कैसे कर सकूंगा, समझ में नहीं आता। गीता का ~~अ~~कर्म कर्मयोग प्रत्यवा मार्ग का डाक्टोरिकल मेटरियलिज्म कुछ सहायता नहीं कर पाते। योगवासिष्ठ बेकार लगता है। मेरी आत्मा की गार्गी के तर्कों का समीचीन उत्तर मेरे दिमाग का यात्रावल्ग्य नहीं दे पाता और मैं विकल हो जाता हूँ।' दो वर्ष बाद, १६ मार्च १९६० को, उन्हीं के नाम एक पत्र में उसने पुनः लिखा : 'मुझे स्वयं अपनी पीड़ा समझ में नहीं आती है, न इस नासमझी का इलाज ही आता है। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या चाहिए। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या नहीं चाहिए। लगता है, भर्मे साराकुछ चाहिये।' वस्तुतः राज-कमार् की अवस्था एक शिशु की भाँति थी, जिसे अपनी भूल का एहसास नहीं होता। और कुछ अवस्थता अनुभव कर जो लगातार रोता चला जाता है।

सर्वविदित है, राजकमल का जन्म एक सामान्य परिवार में हुआ। उसकी बाल्यकालीन परिस्थितियाँ भी तदनुसार ही सामान्य रही। शासकीय चाप और शोषण, सामाजिक अन्धश्रद्धा और उत्पीड़न, पारिवारिक गतिरोध और अभाव, इन सबसे उसका सामना हुआ। मातृक मन, गहरी रेखाएँ खिच गयीं उस पर। ब्राह्म तो फिर मो गनीमत है, लोग एम० ए० और डॉक्टरेट करने के बाद अन्धश्रद्धा और संज्ञा के नारे लगाते हैं; दो सौ तीन सौ की जगह एक हजार रुपये, जिसका वेतन से जीवन ~~आसानी~~ की माँग करते हैं; पर उन दिनों अंगरेजी राज था—क पद्धति ~~विरोध~~ के लिए भी वे महुलाज थे। इन पिशाच सुलभ न थी, पचास रुपये की दर ~~दिया~~ के लिए भी वे महुलाज थे। इन पंचके ऊपर उनको जुबान पर ताला था। वे अपनी मर्जी के मुताबिक कुछ

गो बोल सकने के लिए प्राण की तरह स्वतन्त्र न थे । परिणामतः राजकमल के प्रान्त में प्राण मुलगाती रही, वह श्रवण ही श्रवण करामसाता रहा और ज्यों ही श्रवणर मिता, स्वस्थ मुरार जीवन के संगान में निकल पड़ा। अन्त्यम, ज्योतिषाश्रम जोषण निरुद्ध की सता के लिए प्रार्थना, उसका काम बन गयी ।

पर हुआ। उसका वर्ण लक्ष्य की महानता की तुलना में अपर्याप्त सिद्ध हुआ, वह संक्षिप्त मार्ग की श्रुतमुक्तियों में फँस गया। उसके अन्तर्गत उस किष्कनपरस्त साम्राज्यवादी की-सी हो गयी, जो व्यक्तिगत मुख-सुविधावादी चक्र-ग्रहों नहीं तब तकने के कारण पूँजीपतियों के उन्मूलन के लिए स्वयं भी पूँजीपतिवर्ग के समान प्रवृत्त करने लगता है। परिणामतः कुछ नये मतवाली पूँजीपति पैदा हो जाते हैं, गरीबों के शोषण की मात्रा घटने के बजाय और बढ़ जाती है। वे साम्राज्यवादी या साम्यवादी पूँजीपतियों या जमींदारों से किस प्रकार मेल कर सकते हैं, जो अपने दीर्घ-वृत्तों को पूँजी रखकर सारी कमाई शत्रुत्व में भौक देते हैं, अपनी संस्थाएँ रेलमार्गों की महफिल सजाने में बिता देते हैं; दो या दस रुपये में मजदूर लड़कियों के शरीर खरीदते हैं और फिर अनाज, शोषण और संज्ञा के नारे लगाते हैं। बदकिस्मती से ऐसे ही पाँगपनिष्यों के चक्कर में राजकमल फँस गया और न्याय-विवेक का दीपक बुझा कर शास्त्रत सीन्दर्य का पवित्र लक्ष्य पाने की निरर्थक चेष्टा करता रहा। कभी-कभी अपनी इस भ्रष्टाचार पर उसे सोच होती थी, वह अपने आपको कोसता था, लेकिन फिर अपनी चारित्रिक दुर्बलता को परिस्थितियों का परिणाम बताकर खूद को दोषा देता था। उसके ये शब्द देखिये : 'मैंने हमेशा वही किया है, जो मुझ जैसे प्रारिष्टिक और मानसिक हैसियत के भारतीयों को नहीं करना चाहिए, बल्कि यों कहा जाये कि मैंने स्वयं कुछ भी नहीं किया है, परिस्थितियाँ हैं, मुझ से विपरीत कार्य कराती रही हैं।' स्पष्ट है, 'विपरीत कार्य' उसने किसे कहा है जिस कारण से किसे।

पर वह हरेगा। अपने आप को छलता रहा, ऐसा तो नहीं है। उसने अपने कार यह बात खुलकर स्वीकार की कि दोष उसका अपना था, इसके लिए कोई और दोषी नहीं है। शम्भुनाथ मिश्र के नाम उसने जनवरी १९६६ में एक पत्र लिखा था—“..... मैं अच्छा आदमी नहीं हूँ। छोटी-छोटी चीजों के लिए मेरे मन में भयानक कमजोरियाँ हैं। मैंने स्वयं बका अपने लिए दूसरे को कोई सहायता नहीं दी है। मैंने अपना ही स्वयं हथियार बना लिया है। शायद औरत, पैसा, ऐश-श्रम, यथा, सागे बातों के लिये मैं अपने प्राणों और अपने प्राणिक समाज को खता रहा हूँ। सब करी नहीं, मैंने सिर्फ़ झूठ की जिन्दगी बसा दी है। इसी क्रम में उस साहित्यकार-व्यापक

को भी एक भंकी दोलये, जिसमें राजकमल रहता था और जिसके प्रति उसके मन में गहरा आक्रोश था। राजकमल के ही शब्दों में : 'मैं अपने प्रभुभवं और समकालीन लेखकों-कवियों से अपने सभर्क के कारण जानता हूँ कि नयी पीढ़ी किसी प्रकार के भी नैतिक 'उद्देश्य' प्रथवा बुद्धि प्रथवा बोध से परिचालित नहीं हो रही है। यह परिचालित हो रही है, अपने स्वार्थ, अपनी अस्तित्व-रक्षा और अपने लिए ही से।..... देश और समाज, कम-से-कम अपने देश और समाज के हितों में अगर वह चिन्ता करता है या किसी जुलूस या भंडे में शामिल हो जाता है, तो इसका कारण कोई नैतिक उद्देश्य नहीं होता, प्रथकशांत: कोई शारीरिक स्वार्थ होता है। मैं अपने कुछ लेखक दोस्तों को जानता हूँ, जो कहीं से प्रभुवाद का कोई काम पाने के लिए या अपने राज्य की विधानपरिषद का सदस्य बनने के लिए, या कौशनक शासक की बातों के लिए, इनसे बड़े या इनसे छोटे शारीरिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए, बड़ी प्रशान्ति से प्रयत्न भंडा, प्रयत्न जुलूस, अपने नारे और अपने चेहरे की नकाब बदल लेते हैं। नकाब बदलना तो नैतिक उद्देश्य नहीं है।'

प्रपनो जीवन-वर्षा से वह मत्-ही-मत कितनी घुणा करता था, यह इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है : 'हम लोग प्रपने चौबीस घंटों में चौबीस घंटे किसी टी-ट्राउस में, या किसी श्रीसम्पन्न कवि मित्र या रसिक मित्र के ड्राइंग रूम में, किसी साहित्य-संस्था या सम्मेलन की कालीनों पर पसनाद के सहारे किसी भारतम प्रचार-योजना में, प्रपवा किसी शराबघर, दबाघर, नौदघर में प्रकोले या किसी मित्र या किसी स्त्री के साथ, किसी मंत्र पर, किसी रंगमंच के पाथर्व में, किसी एकान्त कमरे में बन्दी, हुताग्न और शारीरिक स्वार्थों के 'एति प्राणायिक प्रपवा प्राणान्वित रहते हैं हम लोग ।.....इसके साथ ही तुमने तथाकथित प्राणिनीयता, दायित्व-बोध, नैतिक उद्देश्य, प्रतिबद्धता—'अति निरीह शब्दों को साभंक करने के लिए—प्रौर प्रपने चेहरे पर नक्काब डाल कर प्रपने भीतर के पशु, भीतर के भूखे, नगे प्रौर लोलुप पशु को छिपाने के लिए—वक्ष्य देते हैं, कविता लिखते हैं प्रौर सुख-सुविधा के साथ

इस सम्भव है। सही, तो अकाल-मृत्यु की दृष्टि से दूर प्रसन्न, राजकमल की यह आत्म-स्वीकृति ही उसे साधारण लोगों से अलग कर देती है। यह सिद्ध कर देती है कि वह एक साधारण आदमी या और प्रपन्नता के लिये कभी उतरीक्री प्रार्थना से प्रोत्साहित नहीं होता। पर वह पूरी तरह प्रसाधारण नहीं बन सका, क्योंकि शुद्ध संसर्ग ने उसे एक साधारण मनुष्य की कमजोरियों से नहीं उबारने दे दिया। प्रपन्न अलिप्त दिनों में उसे परम-मार्ग की जो प्रतीति है, यदि वह उसके अनुसार चल पाता, तो बहुत सम्भव है, हिन्दी का

दिया। ऐसी श्रमिक शक्तियों को भी मैं जानता हूँ, जिनके सामर्थ्य वह श्रद्धावान्त होता था। फिर मैं कैसे मान लूँ कि रूसी को यह कामनी ही मानता था, बड़े-छोटे का उसे कोई लिहाज न था और परिवार तथा समाज को वह व्यर्थ की ही चीजें समझ कर चलता था। यदि ऐसा होता, तो अपनी में दस महीने बिना रुक श्रमिक वेला तक परेशान न रहता। अस्तित्व है यह समझें कि बाद उसने लिखा भी : 'बेहद जरूरी बात समाज और देश : इन समस्याओं के बिना वर्तमान मनुष्य-व्यवस्था में जीना सम्भव नहीं है।' श्रीराम शुक्ल को भी एक पत्र में उसने लिखा : 'कविता में रवी-शरीर अन्य सभी विषयों की तरह मात्र एक विषय है—कविता का कारण या कविता का प्रतिकर नहीं, मैं ऐसा ही मानता हूँ। अब कविता के लिए हमारी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परलब्धताएँ अधिक आवश्यक विषय हैं।'।

अन्त में राजकमल की साहित्य-सृजन क्षमता पर दो शब्द। जो ल्येण उसे प्रतिभाहीन मानते हैं, उनके प्रति पूर्ण आदर-भाव रखते हुए, मैं कहना चाहूँगा कि वे या तो किसी पूर्वग्रह के शिकार हैं अथवा उन्हें कुछ गलतफहमी हुई है। राजकमल की साहित्यिक क्षमता निस्सन्देह असाधारण थी—वह मूलतः एक साहित्यकार ही था, किसी मतवाद का पोषक नहीं। उसकी कई रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की भी हैं। किन्तु अपनी रचनाओं से वह स्वयं संतुष्ट नहीं था। 'मैं अभी मरना नहीं चाहता। अभी तो मैंने कोई अच्छी-सी चीज भी नहीं लिखी।' उसने ये शब्द श्रीराम के साथ-साथ पारुषाण जैन को भी लिखे थे। पर इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि उसने सचमुच जैन-मार्ग काला किया। दरअसल, इससे यह साबित हुआ है कि वह एक खिन्दा साहित्यकार था, चुका हुआ साहित्यकार नहीं। पर अफसोस, उसकी सभी रचनाएँ उस काल की हैं, जब वह यथायथ का अन्वेषी एक साधारण मनुष्य था। परम यथार्थ को जब उसने प्राप्त किया, और जब हम उससे महान् कृतियों की अपेक्षा कर रहे थे, तब, हमारा दुर्भाग्य हमसे अधिक वह ईश्वर को प्यारा हो गया और हमारे लिए अब गयी, केवल एक कानूनी। जिनकी हम तरह-तरह से व्याख्या कर रहे हैं। ● ●

ना. स. स. : यथार्थ की खोज में..... विद्याभूषण श्रीराम लहर

राजकमल चौधरी : मूल्यांकन

राजीव सक्सेना

हरदयाल

चन्द्रमौलि उपाध्याय

शालभ श्रीरामसिंह

केदारनाथ अग्रवाल

परमानन्द श्रीवास्तव

शिवकुटीलाल वर्मा

धनश्याम शालभ

विजय बहादुरसिंह

अलकानन्दा दासगुप्त

मुरेन्द्र चौधरी

धर्मनन्द गुप्ता

मधुरेश

परेश

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

भारतलाल शर्मा

प्र. क. गुप्ता

जाकिरान्न भी

धीरेन्द्र

दिसम्बर-जनवरी '६८

राजकमल चौधरी : मिश्रक और ग्रथार्थ

राजीव सक्सेना

राजकमल चौधरी ने अपनी अतिमृतम टिप्पणियों में से एक में लिखा था :

‘मैं, राजकमल चौधरी, अपनी तरफ से जनता के पास वापस चला जाने का वायदा करता हूँ—मेरी सही यात्रा वहीं से प्रारम्भ होगी।’ (आलोचना, ३८) सही यात्रा के लिए जनता के पास जाने की बात एक संदर्भ विशेष में कही गई थी। १९६७ के चुनावों में देश के जीवन में एक युगान्तर उपरिष्ठत हो गई था। १९६७ के चुनावों में देश के जीवन में एक युगान्तर उपरिष्ठत हो गई था। किन्तु, राजकमल खतरा भी देख रहा था। उसने कहा : ‘देश की सच्ची राजनीतिक परिस्थिति यह समझने लगी है कि श्रम शक्ति के तत्कालीन साधनों के अस्तित्व को ध्वस्त करने की कोशिश की जा सकती है।’ लेकिन इस मर्यादा का रण जनता शासन के तौर-तरीकों से ऊब गयी है। लेकिन इस ‘महान्’ ऊब का सारा लाभ देश की प्रतिक्रियावादी संस्थाओं और दक्षिणपंथी पाटियों को भी मिल सकता है। जो बात दिल्ली या भद्रास में हुई है, वह दूसरे राज्यों में भी दोहराई जा सकती है। क्योंकि जनता परिवर्तन चाहती है, जनता परिवर्तन के स्वरूप को उसे कल्पना नहीं है और न किसी भी वामपंथी है। लेकिन दल के सिद्धान्तों और योजनाओं की जनता ने स्वीकार किया है। लेकिन परिस्थिति में, बुद्धि-जीवियों का, छासक, लेखकों और कवियों का यह सामाजिक कर्तव्य होता है कि वे जनता को सही जानकारी दें—उसकी स्थिति, उसकी मुक्ति के विषय में।’

सही यात्रा को सामाजिक कर्तव्य से जोड़ने की बात राजकमल के मुंह से

सहृ

कितनी स्पष्टता लगी है। अपने लेखन के प्रारम्भिक वर्षों में राजकमल ने अपनी जो ‘इमेज’ बना ली थी, उसके साथ इस कथन की संगति प्रकीर्ण नहीं होती। किन्तु ‘सामाजिक कर्तव्य’ से राजकमल का वह मतलब न था जो अक्सर हमारे बुद्धिमान समझा करते हैं। उन्हें हमें उच्छ्वसित या सामाजिक कर्तव्य से घृण्य समझते हैं तो इसलिए कि उनकी राय में हम स्थापित मान-मूल्यों के अनुसार नहीं चलते। राजकमल ने ‘कर्तव्य-भावना’ को एक सामाजिक क्रांतिकारी के अर्थ में ग्रहण किया था। लेकिन मनु से थोड़े ही दिन पहले ‘जनशक्ति’ साप्ताहिक में एक लम्बा लेख लिखकर उसने इसी स्थापना पर विस्तार से प्रकाश डाला था। उसने कहा था :

‘हम लोग केवल अपने पूर्ववर्तियों की वैचारिक मान्यताओं की कड़ी नहीं हैं। हम लोग उनकी जीवन-भारा की दिशाओं को भी अपने जीवन में बदल नहीं पाये हैं।’ ... हम मजबूत और शासनतंत्र के विशाल शक्तिधर को बातों है कि हम पूरे जोवादी अर्थतंत्र और शासनतंत्र के विशाल शक्तिधर को बातों में गला फसाने से इन्कार कर दें। लेकिन यह इन्कार तटस्थ, दयनीय और अल्पोद्देशीय से मरा हुआ नहीं होगा। इस इन्कार में एक मजबूत और ईमानदार आदमी और उसके साथ जुलूस की ताकत होगी।’

श्रीर : लेखक, जो कोई सही अर्थ में प्राथमिक है और बुद्धिजीवी है, उसे अपने जीवन और अपने समाज के हर मोर्चे पर पूरी सज्जाई, पूरी ईमानदारी के साथ पक्षधर होकर, क्रांतिकारी होकर, अपने वर्ग, अपने समूह, अपने जुलूस का मुखपत्र प्रकाश बनकर, सामने आना होगा—उसे आखिरी कतार में सिरे

‘

इस प्रकार आधुनिकता की क्रांतिकारी परिप्रेक्ष्य में रखकर राजकमल अपने से एक नयी मांग कर रहा था। इस मांग को वह कैसे पूरा करता, यह कि नये पुच दिलावस होता। दुर्भाग्य से वह इसके लिए जीवित न रह सका।

राजकमल की ये सारी बातें स्वयं उसके लिए नयी थीं, उसके जीवन में एक नये मोड़ का चिह्न थीं, लेकिन हिन्दी के लिए कोई नयी नहीं है। मुक्तिबोध से लेकर भाव के अनेक कवियों तक ने यह अनुभव किया है कि एक नाटकीय और प्रदर्शनकारी आक्रोश लोगों के मनोरंजन का साधन हो सकता है। इससे अधिक कुछ नहीं। विचित्र मुद्राएं, उपहासास्पद देशभूषण, आक्रोश के लिए जन्मेदार हैं। उल्टे, इस प्रकार के कार्यों से उनकी स्थिति सुदृढ़ होती है, क्योंकि वे ऐसे ‘विद्रोहियों’ को समाज से दूर प्रभावहीन बना देते हैं।

दिसम्बर-जनवरी १९८८

राजकमल को सही भाषा का बोध होता है, मनु से साक्षात्कार, स्थिति में। एक ऐसी स्थिति में, जब पिछली मान्यताओं के आधार पर प्राप्ति बढ़ती, जीवित, मृतक या—है, ऐसी स्थिति में जब समस्त पिछले जीवन का मूल्योन्मूलन करते हुए मनुष्य नित्य का बोध होता है। प्रसन्नता में पड़ा हुआ राजकमल एक विश्राम दृष्टि डालता है अपने व्यतीत पर :

‘लिखने पढ़ने में, गाँवा प्रथम सिमरित पीने मरने का

एकमात्र कर्म

अदर से बद करके दोषहर दिन के पसीने पेशाव वीर्ययात

मदमले अंधेरे में लीटे हुए

बुझां क्रोध दुर्गन्धि पीते रहने के सिवा

जिसने कभी कोई बड़ा काम नहीं किया अपनी देह

अथवा अपनी चेतना में इस उच्च तक

जटिल हुए कित्नु कोई भी प्रतिभा

बनाने योग्य नहीं हुए उसके मनुभव

नहीं निद्राएं और नहीं वेश्याची संभोग यातनाएं भी नहीं.....’

मुक्तिप्रसंग :

अपनी इतनी कड़ी आलोचना वही कर सकता है, जो ईमानदारी के साथ आत्म-साक्षात्कार कर सकता है। इससे पहले की अपनी धारणाओं का व्यामोह चकनाचूर होते ही श्रद्धा का गुब्बारा फूट जाता है और वह सहज मनुष्य बन जाता है। ‘जनशक्ति’ में प्रकाशित उपरोक्त लेख में वह अपने से ही । वाद में लीन हो जाता है, और कहता है :

‘सिद्धता, समानता, स्वाधीनता, जनवाद और समाजवादी देशों की मित्रता को गति करना और इनके बारे में पाठक-वर्ग को सही जानकारी देना गलत है और अपनी प्रेमिका, अथवा अपने ईश्वर अथवा अपनी आत्मा की हिचकिचाहटों और ऊब के बारे में बातचीत करना, कविता लिखना, कहानी-उपन्यास लिखना, सही है—इस तरह की दलीलों सिर्फ वे लोग देते हैं, जिनके लिए देश की राजनीति और देश की अर्थनीति कोई महत्व नहीं रखती है। क्योंकि वे आत्म-मुक्ति । उन्हें अपनी रोटी-नौट मिल गयी है। वे मौसम की, फैशन की, अपने बुद्धि, और सिर-दर्द की बातें करता ज्यादा पसन्द करते । मैं इन्हीं को कहता हूँ, जब कि रिलीफ-चर्चे के लिए ही वे लोग नाच-गानों का प्रोग्राम आयोजित करते हैं। वे ही वक्तव्य प्रकाशित करते हैं। और वे ही लोग गहरे में लोगों के बारे में आंचलिक कहानियाँ और रेस्तरांओं और वेश्याओं के रेस्तरां में शहरी कहानियाँ लिखते हैं।’

राजकमल प्रथमः राजीव सत्सेना

लहर

और राजकमल स्वयं यह कहता रहा था। उपरोक्त दोनों लेख लिखने से पहले पढ़ते राजकमल, १९६६ के अपने एक मित्र शंभुनाथ मिश्र के ‘मित्र व्यक्तिगत’ पत्र लिखते हैं, जिसमें विषय में आग्रह था कि ‘इसे एक मित्र को भी न पढ़ाओ, तो बेहतरीन नहीं’ । कमल ने लिखा था : ‘इस बीमारी में शारीरिक, मानसिक और आर्थिक—तीनों प्रकार के भौतिक तापों की चरम सीमा का अनुभव हुआ है। बीमारी में मैं रहा हूँ। लेकिन अब अपने शरीर से तटस्थ हो चुका हूँ, जैसे (मुन्ता हूँ) सावक-सूखी लीन तटस्थ हो जाते हैं।’ ‘स्वस्थ हो जाने के बाद भी, यह तटस्थता जीवन में नाम देगी, और मेरे चरित्र और व्यक्तित्व की बुराइयों को दूर करने में सहायक होगी। ...छोटी-छोटी चीजों के लिए मेरे मन में मगानक कमजोरियाँ हैं।’ ‘आयद औरत, पैसा, ऐश-आराम, यश—सारी बातों के लिए मैं अपने आपको और अपने आन्तरिक समाज को ठगता रहा हूँ। सब कभी नहीं, मैंने सिर्फ झूठ की चिन्तनी बसर की है....’

झूठ की चिन्तनी एक राजकमल ने नहीं, स्वतन्त्रता के बाद भारतीय युवकों के एक बहुत बड़े हिस्से ने बसर की है। भारतीय समाज के कणुंवार, सत्ता और व्यक्ति-स्वार्थ के उन्चे भगदों में प्रकट लगा रहे थे। किसी प्रेरणादायक जीवन-मूल्य के लिए कोई ऐसा व्यापक संघर्ष न था, युवक जिसका भोग बनकर अपनी विद्रोही आत्मा को सार्थकता देते । समाजवादी मान-मूल्यों का आंदोलन बहुत छोटा तो था ही—विभिन्न समाजवादी पाठियों ने आपस में लड़कर उसकी कुठिल कर रखा था ; उसमें इतनी प्रकट न थी कि वह युवकों को बौद्धिक और मानवा के स्तर पर आंदोलित कर सकता ।

और इस स्थिति में निहित स्वार्थों के प्रतिनिधि, विचारक, साहित्यिक क्षेत्र में ऐसे विचार प्रतिपादित कर रहे थे, जो व्यक्तिवादी विचारों के प्रकट करते थे और कालिकारी आंदोलन से भ्रमण कर बुद्धिजीवी को अकेला कर देते थे । जिस दशक में राजकमल ने साहित्यिक आँखें खोलीं, उसमें राजनीति से साहित्यकार को भ्रमण रखने के पक्ष में जबर्दस्त दार्शनिक और मातृकता-प्रधान दलीलों दी जाती थीं । ऐसी स्थिति में युवक एक ‘आत्म-सम्प्रेषण’ (तल्लीनता) (राजकमल के ही शब्द) के ही शिकार हो सकते थे । ‘हीनता और प्रायुक्तिकता की तमाम बहसों के बावजूद हमारी पीढ़ी अनेक प्रकार की ‘जीवादी मान-मूल्यों का शिकार रही है। उदाहरण के लिए अनेक प्रेमिकाओं के अस्तित्व की डींग हाँकना और मानसिक मंथन करना । तबपाओ की अपने प्रति सहानुभूति प्रकट करना । शरीर की ‘मैगलैम’ क्षमता सिद्ध करने का प्रयत्न करना । अपनी वैचारिक और शैक्षिक दरिद्रता को बायमार्गी

दिसम्बर-जनवरी १९८८

उत्पत्ति

सन्तो जैसे 'पोप' से गौरवान्वित करना (यह इसे पश्चिम में 'बौद्धिक या बौद्धिक' शब्दों से मढ़ी करना) । ३१ नीचे दृश्यनीयता को जानने का माना पहचाना और लोगों की करुणा, भावना, लाम उठाना । विद्रोह के नाम पर मिला या पड़ा । जैसे अंतर्गत व्यक्ति या सहनशील दोस्तों का प्रपमान करना । फाई ।

एक झूठ की छिन्नी भी । अपने को असाधारण और अद्वितीय सिद्ध करने का यह प्रयत्न हमें हम सभी में था, और है । राजकमल इसको इतना तक ले गया । इन सबके सहारे वह अपने को एक मिथक बनाने का प्रयत्न करता रहा । और यही उसकी बीमारी थी ।

किन्तु वह एक ईमानदार आदमी था । एक विवशता थी कि उसको यह मिथक बनाये बिना सम्मान पाने की आशा न थी । बीमारी का बढ़ाना बनाये बिना उसको कोई आर्थिक सहायता, यहाँ तक कि उसके लेखन का पारिश्रमिक तक, समय पर देने के लिए तैयार न था ।

मुझे कभी नहीं भूला कि कुछ वर्ष पहले जब वह दिल्ली आया—एक प्रकाशक से ऐसे वसूल करने के लिए—तब मैंने उससे पूछा कि : 'क्या यह सब है कि तुम्हारी अनेक प्रेमिकाएँ हैं, जो तुम्हें ऐसा भोजनी रहती हैं ?' तब वह हँस पड़ा था । बोला : 'राजीव भाई, आप भी इस सब पर यकीन करते हैं ?' ये सब इन लौड़ों पर रीढ़ गालिब करने की बातें हैं । मैं अपनी पत्नी को और बच्चों को बेहद प्यार करता हूँ ! और मैं समझ रहा था कि वह इस बार अक्षय्य सब कह रहा है ।

इसी तरह के कई किस्से उसने अपने विषय में फैला रखे थे । और इस प्रकार के मिथक व्यक्तित्व के मिथ्यापन की यातना वह अंदर ही अंदर भोगता हुआ जहाँ हो रहा था । मैं कहना चाहता हूँ कि राजकमल की मृत्यु के निम्नोद्धार वे अंतर्गत जीवन-मूल्य और मान्यताएँ हैं, जिनके विरुद्ध हमने यथेष्ट संघर्ष नहीं किया । राजकमल की तरह हम में से अधिकांश लोग इन्हीं जीवन-मूल्यों को एक साहित्यिक के रूप में और एक व्यक्ति के रूप में अपने को जीवित रखने का पाषाण मानते रहे हैं । हमने यह नहीं देखा कि इन मूल्यों को प्रसारित करने के लिए वे बर्ग और उनके एजेन्ट करते हैं, जिन्हें इस समाज की यथार्थ स्थिति बुरी है । हमने ही दिलचस्पी है, और वे नहीं चाहते कि हम असाध्यत एताना अपने समाज-द्रोही और व्यक्ति-घाती साजिशों का पर्दाफाश करके बुरा प्रभाव आर्थिक-राजकमल ने प्रकटतः इस सत्य को देखा । उसने कवि श्री राम शुक्ल के नाम से लिखा :

'स्त्री-शरीर बहुत स्वास्थ्यायु है, लेकिन, कविता के लिए नहीं, समीप

राजीव समसेना लहर

के लिए । कविता में स्त्री शरीर का कोई भी भाग ही मानता है, किन्तु, है—कविता का शरीर या प्रतिमा । कोई भी, की तुम्हें पूरी आकांक्षा है, जो मानते हो, उसे मानें । उसे भी, शरीर की आर्थिक और सामाजिक, है । अब, कविता के लिए हमें, राजकमल, आर्थिक और सामाजिक, परतबताएँ अधिक आवश्यक विषय हैं । स्त्री शरीर की राजनीतियों, सेवों-बनियों, और इनके प्रचारकों ने अपना दृष्टिकोण बनाया है—हम लोगों को अपना कीलबास बनाये रखने के लिए । बेहतर हो, हमें अक्षय्य के कवर पर छपी हुई, कैलखटों पर छपी हुई, प्रचलित रिक्तियों और अपने अन्तर्गत सफर और प्राइवेट सैक्टर के मालिकों के लिए हमारा ईमान, हमारा जेहन, हमारी ताकत खरीद कर हमें नपुंसक बनाने वाली अश्वनंगी रिक्तियों को, हम अब अपने साहित्य में उसी प्रकार प्रश्रय नहीं दें, न आत्ममरति के लिए, न पर-मीडि के लिए । मैं शरीर-प्रशील नहीं मानता हूँ । लेकिन हम कवि हैं, हमें न तो नपुंसक और न स्त्री अंगों का बकील बनना चाहिए ।

'सही यात्रा' तक पहुँचने के पहले की राजकमल की यात्रा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि वह कुतिसित सामग्री और अर्द्ध-जीवनादी मूल्यों में बंधे हुए एक युवक द्वारा अपने को अपने मुक्त करने के प्रयत्नों की गाथा है । राजकमल अर्द्ध-सामन्ती कुल में जन्मा और ऐसी परिस्थितियों से गुजरा, जिनसे उसकी विद्रोह-भावना दिन प्रति-दिन बढ़ होती गयी । उसे अगर सही ढंग से पढ़ने-लिखने और वैज्ञानिक विचारों को आत्मसात् करने का अवसर शुरू में ही मिला होता, तो शायद वह अपने प्रारंभिक लेखन-काल में ही 'सही यात्रा' के विंदु पर पहुँच गया होता । कुछ गलत मूल्यों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए, किन्हीं गलत मूल्यों के बंगुल में फँसकर और फिर उनके विरुद्ध भी संघर्ष खेड़ते हुए, वह एक सतत संघर्ष में जूझता रहा, जिसने उसका शरीर डिया । किंतु सही राह खोजने की उनकी प्यास अदम्य थी । वह किसी क विदु-विशेष पर रक नहीं गया ।

ऐसा सिर्फ वही कर सकता है, जो अपने प्रति ईमानदार हो । तबमा किन्तु को स्वयं पैदा कर उसने उन्हीं को सही उठारने की दार्शनिक कोशिश की । अपने को 'राहों का अन्वेषी' कुछ और लोगों ने भी कहा है, जिन्होंने पहले ही 'पहुँच' हुए व्यक्ति श्र और जहाँ तीस वर्ष पहले थे, वहाँ पाद खड़े हैं । राजकमल सबभुव राहों का अन्वेषी था और इसीलिए उसका शरीर को एक सतत विकासमान गतिशीलता और नित नया प्राप्त होती रही है । उदाहरण के लिए 'प्रारंभ' नामक संग्रह में 'राजीव' नामक कविता है । रचना शैली में 'नयी कविता' के अत्यन्त निर्धन 'काकाजी' में उसने

दिसम्बर-जनवरी '६८ ५५

इतने पर 'नामध्याप्रसंग' एक महत्वपूर्ण कविता है। एक दस्तावेज है, हमारा समय का। 'आज्ञा की घोषी के मुक्ति-नामी श्रमियान में वह एक मील-दस्तम है, जिसकी ओर हमें बार-बार मुड़कर देखना होगा। युग-बोध से श्रमिक वह अपने शिल्प की उपलब्धि में महत्वपूर्ण है। इसीलिए यह कविता सातवें दशक की महत्वपूर्ण रचनाओं में स्थान प्राप्त करती है, जिसकी चर्चा के बिना साहित्य का कोई इतिहासपूर्ण नहीं हो सकता।

राजकमल एक मिश्रक के रूप में सर गया है और जो उसकी यथार्थ उपलब्धि है वह सुरक्षित है। ● ●

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
द्वारा प्रकाशित
तथा श्री बालकृष्ण राव द्वारा
सम्पादित मासिक

सहवर्ती साहित्य, विवेचन, प्रतिपत्तिका, समीक्षाएँ, प्रयालोचन-मुनिविचार, हिन्दी जगत, पत्र-प्रतिक्रियाएँ, 'माध्यम' के स्तम्भगत प्राकरण हैं ।

एक प्रकं का मूल्य : १.२५ । वार्षिक शुल्क : १२५०
पञ्चाक्षरः ५०० बा० नं० ६०, इलाहाबाद ।
यथा व्यवस्थापकीय कार्यालयः

गानों का प्रोत्साहन प्रयासों के
ये ही लोग गाने के माध्यम से
रेस्तरात्रों और वेष्टार्यों के द्वारा
इस्य सम्मेलन, इलाहाबाद

बार्थ : राजीव सरकार

आहूत

राजकमल का चैतन्य-शोक
हरदयाल

हरदयाल

हिन्दी के साहित्यकार की, कम-से-कम उसकी, जो केवल साहित्यकार है, एक नियति है कि वह विपन्न होता है। उसकी विपन्नता उससे अनेक कार्य —साहित्यिक कार्य करताती है। कभी वह अध्यापकी करता है, कभी सम्पादक बनता है, कभी वह बलकें होता है और कभी-कभी सारकारी भ्रमसर भी। इस प्रकार के व्यवसाय ग्रहणाना उसके लिए अनिवार्य हो जाते हैं। उसे इन व्यवसायों के कारण अपनी रचनात्मक चेतना को इस प्रकार नियन्त्रित करना पड़ता है, कि उसकी 'शुद्धता' सम्पन्न हो जाती है। वह जो अनुभव करता है और उस अनुभव को जिस तरह सम्प्रेषित करना चाहता है, नहीं करता है और उस व्यवस्था का विरोध करता है, वही व्यवस्था उसके कर पाता। वह जिस व्यवस्था का विरोध करता है। अगर वह उस व्यवस्था का विरोध, अस्तित्व की रक्षा की जिम्मेदार होती है। अगर वह उस व्यवस्था का विरोध करता है तो उसका अस्तित्व खतरे में पड़ता है और अगर वह विरोध नहीं करता है, तो उसकी साहित्यिकता खतरे में पड़ती है। फिर वह क्या करेगा? उसे निकस लाई में गिरना है, आकाश से गिर कर ख़ूब पर लटकना। शुद्धता बनाए रखने के लिए साहित्यकार के पास कोई ऐसा विकल्प नहीं है, जो उपर्युक्त संकट से मुक्त कर सके। इस संदर्भ में लेखक के अस्ति-जीवी होने अर्थात् केवल अपनी रचनाओं के द्वारा जीवित रहने की बात नहीं आ सकती है, जो जाती है। किन्तु मुझे लगता है कि हिन्दी में, जहाँ सब्ब नहीं आई है। सभी दुन्द्यावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र, दिग्विजय सिंह, को भीति अपने प्रकाशन नहीं चला सकते। हिन्दी के कितने भी भाति अपने प्रकाशन नहीं चला सकते। विद्रोही साहित्यक स्वर के सम्बन्ध में ईमानदार हैं? विद्रोही साहित्यक यों प्रसमंभ चीज है। इसीलिए वह जहाँ अनेक विद्रोही साहित्यक वही उनसे श्रविक मात्रा में उसे मात्र पत्रका

के हिन्दी साहित्यकार को विशेषाङ्गण से सम्मानित किया है। युवा गोष्ठी इसी में आयोजित की गयी है। यह अवसर विशेष है। इसकी चेतना का निर्माण कर रही है। चेतना सरल, सामान्य, युवा नहीं है। यह उन्मुख, मन्यविरत व्याकुल, विस्फोटक, दाहक, नाशक है। राजकमल इसी पीढ़ी के साहित्यकार थे। उनकी चेतना का निर्माण इन्हीं परिस्थितियों में ही हुआ था और उनकी चेतना उक्त युवाओं से युक्त थी।

जन्म का एक गति-काल है। इस स्वीकार नहीं करता। शततपहमियों को लेकर सुख से जिया जा सकता है, या यो कहिए, दिन काटे जा सकते हैं। दिन काटना जीना नहीं है। जीता वह है, जो अपने यथार्थ से अछिन्न नार कर सकता है। जो उसे एसद नहीं है, उसे डुकार सकता है। जो मुझे सब नहीं लगता, मैं उसे भस्वीकार करता हूँ। तुम जिस वास्तविकता को भय या निहित स्वार्थ के कारण मुन्दर भावपूर्णों में ढक कर रखना चाहते हो, मैं उसे उजागर करने की साहसिकता रखता हूँ। जीना इसे कहते हैं। राजकमल जितने दिन जिया, इसी भस्वीकार और इसी साहसिकता को लेकर जिया। उसने थोड़े दिन जीकर जीवन की सार्थकता सिद्ध की और हम सबके अस्तित्व पर एक व्यापारिक प्रश्न-चिह्न बनकर चला गया।

ऐसा व्यक्ति सामान्यतया पसन्द नहीं किया जाता। समाज को अपनी भयान्त्रिण नष्ट होती लगती है। निहित स्वार्थों को अपने स्वल्प चकनाचूर होते प्रतीत होते हैं। वे मिलकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से ऐसे व्यक्ति को समाप्त कर डालना चाहते हैं। 'राजकमल अम्बली साहिय रचता था' 'राजकमल का न लया था। राजकमल गन्दी चेतना का साहित्यिक था। राजकमल ने सबर्ग तथा अन्य बीट साहित्यकारों की नकल की। इस तरह के आरोप के पथ ढंग से लगाये गये हों, यह बात नहीं है। उनके पीछे, चाहे असजग रूप से ही सही, समाज के एक वर्ग की ओर से साहस्य आक्रमण की भावना थी। जो स्थय था, वह सिद्ध हो गया। राजकमल हमारे बीच नहीं है।

का भविष्य रहने के लिए राजकमल को बहुत संघर्ष करना पड़ा। वह लेखन पर करने के लिए तैयार था। इसलिए कविताएँ, कहानियाँ और उपन्यासों की रचना के स्थिति बर्तमान में अनुवाद करता पड़ा। पत्रकारिता के आग्रह से उसे तमाम हलकी-पट्टी प्रयोग करने पड़े। वह वस्तुतः कवि एवं कथाकार हो या। इन्हीं में उसकी गानों का प्रोशाम आयोजित होता है। अत्यन्त तो केवल कलम-धिसाई की है। ये ही लोग गाने गाते हैं। मैं ने वस्तु के तीर जो क्षेज जुना, वह वर्जित क्षेज या। वेस्तराओ और वेयाओ के ड्रिस्ट जैसे में वर्तमान समाज एवं राजनीति प्रादि के

प्रानों को बर्षों को प्रवण है, किन्तु प्रवृत्ता है, प्रसाभा और प्रसाधारण प्रसा सवन्तो का

(क) एक दो सीने १ भुकर करता है
उप-इलाक-व-राइलन-दुबूब

नाक में सैतीस इंच ऊँचा। चर की नली
उसके स्तनों पर सफेद गंध
.....

श्रीकादम्ब-३; पु० ४२:

(ख) मासिक धर्म का एक जाना ही कारोबारा घोटों के लिए सबसे बड़ा अपराध है ।

ताँबे के तारों के जाल बिछाये गये हैं

गमं कुंढों के ऊपर,

दरवाजों पर ।

∴ अकविता—?, पृ० १२ :

(ग) 'अनार के गले में हरी-पीली धारियों का कनी मफलर बँधा था स्वेटर थिकत होने की वजह से उसके स्तन समतल दीखते थे।' 'अनार ने सिरफ़ एक स्वेटर पहन रखा है, स्वेटर के नीचे ब्लाउज नहीं है।'।

तुमने क्यों कहा था असंयम शरीर-व्यवस्था के बिना नहीं. रहने

कवच.....एक ही मत्स्यगंधा धारण करेगी

समस्त ऋषि-लिङ्ग—यही निर्णय

अपरविधियों का ।

: लहर, भावं '६७

(घ) 'वार्मिक आरुखा और 'बदलन' रिक्तियों की संगति मानव पाने के ये दोनों कारण और प्रतिफल मैंने अपना, और लगभग दस साल से तीस साल की उम्र के भारत में एक स्थान, दो महानगरों, पाँच तीर्थ-स्थानों, एही, से । तेरह सत्यासो और तांत्रिकों, बाठ वैष्णव और वैदिकगणों और अन्त में, एक नैष्ठाव यात्रा मैंने की । यात्रा, प्रथम १९०५, १९०६, १९०७, १९०८, १९०९, १९१०, १९११, १९१२, १९१३, १९१४, १९१५, १९१६, १९१७, १९१८, १९१९, १९२०, १९२१, १९२२, १९२३, १९२४, १९२५, १९२६, १९२७, १९२८, १९२९, १९३०, १९३१, १९३२, १९३३, १९३४, १९३५, १९३६, १९३७, १९३८, १९३९, १९४०, १९४१, १९४२, १९४३, १९४४, १९४५, १९४६, १९४७, १९४८, १९४९, १९५०, १९५१, १९५२, १९५३, १९५४, १९५५, १९५६, १९५७, १९५८, १९५९, १९६०, १९६१, १९६२, १९६३, १९६४, १९६५, १९६६, १९६७, १९६८, १९६९, १९७०, १९७१, १९७२, १९७३, १९७४, १९७५, १९७६, १९७७, १९७८, १९७९, १९८०, १९८१, १९८२, १९८३, १९८४, १९८५, १९८६, १९८७, १९८८, १९८९, १९९०, १९९१, १९९२, १९९३, १९९४, १९९५, १९९६, १९९७, १९९८, १९९९, २०००, २००१, २००२, २००३, २००४, २००५, २००६, २००७, २००८, २००९, २०१०, २०११, २०१२, २०१३, २०१४, २०१५, २०१६, २०१७, २०१८, २०१९, २०२०, २०२१, २०२२, २०२३, २०२४, २०२५, २०२६, २०२७, २०२८, २०२९, २०३०, २०३१, २०३२, २०३३, २०३४, २०३५, २०३६, २०३७, २०३८, २०३९, २०४०, २०४१, २०४२, २०४३, २०४४, २०४५, २०४६, २०४७, २०४८, २०४९, २०५०, २०५१, २०५२, २०५३, २०५४, २०५५, २०५६, २०५७, २०५८, २०५९, २०६०, २०६१, २०६२, २०६३, २०६४, २०६५, २०६६, २०६७, २०६८, २०६९, २०७०, २०७१, २०७२, २०७३, २०७४, २०७५, २०७६, २०७७, २०७८, २०७९, २०८०, २०८१, २०८२, २०८३, २०८४, २०८५, २०८६, २०८७, २०८८, २०८९, २०९०, २०९१, २०९२, २०९३, २०९४, २०९५, २०९६, २०९७, २०९८, २०९९, २१००, २१०१, २१०२, २१०३, २१०४, २१०५, २१०६, २१०७, २१०८, २१०९, २११०, २१११, २११२, २११३, २११४, २११५, २११६, २११७, २११८, २११९, २१२०, २१२१, २१२२, २१२३, २१२४, २१२५, २१२६, २१२७, २१२८, २१२९, २१३०, २१३१, २१३२, २१३३, २१३४, २१३५, २१३६, २१३७, २१३८, २१३९, २१४०, २१४१, २१४२, २१४३, २१४४, २१४५, २१४६, २१४७, २१४८, २१४९, २१५०, २१५१, २१५२, २१५३, २१५४, २१५५, २१५६, २१५७, २१५८, २१५९, २१६०, २१६१, २१६२, २१६३, २१६४, २१६५, २१६६, २१६७, २१६८, २१६९, २१७०, २१७१, २१७२, २१७३, २१७४, २१७५, २१७६, २१७७, २१७८, २१७९, २१८०, २१८१, २१८२, २१८३, २१८४, २१८५, २१८६, २१८७, २१८८, २१८९, २१९०, २१९१, २१९२, २१९३, २१९४, २१९५, २१९६, २१९७, २१९८, २१९९, २२००, २२०१, २२०२, २२०३, २२०४, २२०५, २२०६, २२०७, २२०८, २२०९, २२१०, २२११, २२१२, २२१३, २२१४, २२१५, २२१६, २२१७, २२१८, २२१९, २२२०, २२२१, २२२२, २२२३, २२२४, २२२५, २२२६, २२२७, २२२८, २२२९, २२३०, २२३१, २२३२, २२३३, २२३४, २२३५, २२३६, २२३७, २२३८, २२३९, २२४०, २२४१, २२४२, २२४३, २२४४, २२४५, २२४६, २२४७, २२४८, २२४९, २२५०, २२५१, २२५२, २२५३, २२५४, २२५५, २२५६, २२५७, २२५८, २२५९, २२६०, २२६१, २२६२, २२६३, २२६४, २२६५, २२६६, २२६७, २२६८, २२६९, २२७०, २२७१, २२७२, २२७३, २२७४, २२७५, २२७६, २२७७, २२७८, २२७९, २२८०, २२८१, २२८२, २२८३, २२८४, २२८५, २२८६, २२८७, २२८८, २२८९, २२९०, २२९१, २२९२, २२९३, २२९४, २२९५, २२९६, २२९७, २२९८, २२९९, २३००

ये राजकमल की भाँवता, डायरी गीरान के कुछ उद्धरण है। पारा उद्धरणों की प्रवेशिका नहीं देती। पढ़ा जाइये और 'सूयोन का प्रारम्भिक ज्ञान', 'परा क नीने दब हुए हाथ' जैसी कमाली, 'मन्त्रो धरी हुई' जैसे उपमाओं को पढ़ जाइये। राजकमल के नेत्र-चित्रणों को एक भलक प्राणको मिल जायोगी। इस चेतना-लोक के अभिप्राय यह है : नंगी बदचलन स्त्रियाँ, पासी और मुसहड़ों की स्त्रियाँ; 'कांली, सफेद-गीर स्वस्थ एवं नग्न, गंधाती देह, पुष्ट बलुी जाँघें, काली घोड़ी ताल लगाम' झूलते शिथिल-कठोर रतन; किशोरों से प्रपनी पुष्ट बाँहों में जकड़ती प्रौढ महिलाएँ; ताडी, शराब, शव, होर्मो-सेक्सुअल, मोगा-मैथुन, बदन्न मरे कपड़े, श्मशान, बीमारियाँ, प्रसूतताल, तान्त्रिक, विद्रोही, नशा, संख्याएँ, असामान्य स्थितियाँ और असाधारण प्रतिक्रियाएँ, आक्रोश, घुटन, कुंठा, छटाघटाहट, स्थिरता और शान्ति की अस्थिर और अशान्त तलाश, देश की एवं विश्व की सांस्कृतिक, राजनैतिक घटनाएँ—संदर्भ, सामाजिक विरोधाभास ।

(क) वह लम्बे अरसे से बीमार थे । कुछ लोगों का कहना है कि वह उसी दिन बीमार हो गये थे, जिस दिन गैसबर्ग भारत आया । कि बीटलिको आबो-हवा उनके माँझ नहीं पड़ी । कि उन्हें औरतों ने नहीं, औरतों के खयाल ने बीमार बनाया ।’

(ख) 'राजकमल चौधरी का साहित्य कुल मिलाकर रण साहित्य है और उसकी रान-प्रसता ही उसका मुख्य आकर्षण है।' उनके उपन्यासों और उनकी कहानी-कविताओं में न केवल पात्र रण हैं, बल्कि हर जगह रण लेखक के दर्शन होते हैं।'

से गीत है कि राजकमल का चेतना-लोक साधारण नहीं है। इसलिए साधारणों से जब उसे देखा जाता है, तब वह राग प्रतीत होता है। सामान्यतया जो भी नदी कहा जा सकता है, वह भी तथ्य है कि वे शारीरिक दृष्टि से बीमार करने के कारण शरीरों में ही उनकी मृत्यु हुई। सेक्स का जैसा और जितना विनम्र स्थिति बर्तन, प्रत्यक्षनाथों में किया है, वह सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से विडूरत स्थिति में प्रवेश करने दो प्रत्यक्ष है : 'क्या राजकमल ने जो कुछ विनम्र किया गानों का प्रोग्राम प्रायोपनिवेशगार जीवन के किसी अंश का यथार्थ नहीं है ?' ये ही लोग गार्हस्थ हैं, जो सहाता की इस अवस्था तक ले जाने का

कावेतनालोकः हरदयाल

अहम

[illegible]

राजकमल ने जो कुछ अपनी रचनाओं में प्रकट किया है, वह उसकी प्रामाणिक अनुभूति है। जब समाज में ये चीजें पूरी तरह विद्यमान हैं, युवा-मान उन्हें देखता-सुनता है, वे उसको बेतला का अभिन्न अंग बन जाती हैं—फिर वह उन्हें अभिव्यक्त क्यों न करे ? आकाश लेखक पर करने के बजाय अगर उन शक्तियों पर किया जाये, जो इसके लिए उत्तरदायी हैं, तो ज्यादा स्वस्थ दृष्टि कोण होगा। किन्तु होता इसका उलटा है। कभी 'उग्र' ने साहस कर 'नीची' का उद्घाटन किया था, तो उनके विरुद्ध एक लम्बा-चौड़ा आन्दोलन ही खड़ा कर दिया गया था। उनके साहित्य को 'घासलेटी' विशेषण से सजा दिया गया था। राजकमल के साथ भी लोग यही करने पर आमादा रहे हैं। 'जनकमल को औरतों, औरतों के खयाल या बोटनिकों ने नहीं मारा। उसको हमारी समाज-व्यवस्था ने मारा। सचमुच कुछ लोग बहुत भाष्यशाली होते हैं, जिन्हें जीवन संघर्ष कभी कैलना ही नहीं पड़ता; बिनके सामने जीवन का, वह बन कर नहीं आता। जो बड़े बाप के बेटे होते हैं, प्रमादी संत, हींसे। होते हैं। वे ऊंचाइयों पर 'लिफ्ट' से पहुँचते हैं। वे टूटे-फूटे धारण दर्द को क्या समझेंगे ? वे कैसे जान पायेंगे कि माँ, पिता, यथाश्र्वत्वादी मो वे प्रस्त आदमी कैसे अकाल वृद्ध हो जाता है।' 'लगात यह रिश्ते यथाश्र्वत्वादी

दिसम्बर-जनवरी '६८

22

७११. ७१२. ७१३. ७१४. ७१५. ७१६. ७१७. ७१८. ७१९. ७२०. ७२१. ७२२. ७२३. ७२४. ७२५. ७२६. ७२७. ७२८. ७२९. ७३०. ७३१. ७३२. ७३३. ७३४. ७३५. ७३६. ७३७. ७३८. ७३९. ७४०. ७४१. ७४२. ७४३. ७४४. ७४५. ७४६. ७४७. ७४८. ७४९. ७५०. ७५१. ७५२. ७५३. ७५४. ७५५. ७५६. ७५७. ७५८. ७५९. ७६०. ७६१. ७६२. ७६३. ७६४. ७६५. ७६६. ७६७. ७६८. ७६९. ७७०. ७७१. ७७२. ७७३. ७७४. ७७५. ७७६. ७७७. ७७८. ७७९. ७८०. ७८१. ७८२. ७८३. ७८४. ७८५. ७८६. ७८७. ७८८. ७८९. ७९०. ७९१. ७९२. ७९३. ७९४. ७९५. ७९६. ७९७. ७९८. ७९९. ८००. ८०१. ८०२. ८०३. ८०४. ८०५. ८०६. ८०७. ८०८. ८०९. ८१०. ८११. ८१२. ८१३. ८१४. ८१५. ८१६. ८१७. ८१८. ८१९. ८२०. ८२१. ८२२. ८२३. ८२४. ८२५. ८२६. ८२७. ८२८. ८२९. ८३०. ८३१. ८३२. ८३३. ८३४. ८३५. ८३६. ८३७. ८३८. ८३९. ८४०. ८४१. ८४२. ८४३. ८४४. ८४५. ८४६. ८४७. ८४८. ८४९. ८५०. ८५१. ८५२. ८५३. ८५४. ८५५. ८५६. ८५७. ८५८. ८५९. ८६०. ८६१. ८६२. ८६३. ८६४. ८६५. ८६६. ८६७. ८६८. ८६९. ८७०. ८७१. ८७२. ८७३. ८७४. ८७५. ८७६. ८७७. ८७८. ८७९. ८८०. ८८१. ८८२. ८८३. ८८४. ८८५. ८८६. ८८७. ८८८. ८८९. ८९०. ८९१. ८९२. ८९३. ८९४. ८९५. ८९६. ८९७. ८९८. ८९९. ९००. ९०१. ९०२. ९०३. ९०४. ९०५. ९०६. ९०७. ९०८. ९०९. ९१०. ९११. ९१२. ९१३. ९१४. ९१५. ९१६. ९१७. ९१८. ९१९. ९२०. ९२१. ९२२. ९२३. ९२४. ९२५. ९२६. ९२७. ९२८. ९२९. ९३०. ९३१. ९३२. ९३३. ९३४. ९३५. ९३६. ९३७. ९३८. ९३९. ९४०. ९४१. ९४२. ९४३. ९४४. ९४५. ९४६. ९४७. ९४८. ९४९. ९५०. ९५१. ९५२. ९५३. ९५४. ९५५. ९५६. ९५७. ९५८. ९५९. ९६०. ९६१. ९६२. ९६३. ९६४. ९६५. ९६६. ९६७. ९६८. ९६९. ९७०. ९७१. ९७२. ९७३. ९७४. ९७५. ९७६. ९७७. ९७८. ९७९. ९८०. ९८१. ९८२. ९८३. ९८४. ९८५. ९८६. ९८७. ९८८. ९८९. ९९०. ९९१. ९९२. ९९३. ९९४. ९९५. ९९६. ९९७. ९९८. ९९९. १०००.

फूल नहीं गुलदस्तो नहीं श्रवणार नहीं पारिवारिक जनम-कुण्डलियां नहीं कोई श्रमपूर्व वस्तुएं और मूर्तिमान द्विषमस्ता मरो हुए सैनिकों का सिर काट कर मुंडमाल पहनाने के लिए वह मूर्ति गढ़ते हैं रक्तबीज रक्तबीजी

उसका नाम कहते हैं एक दिन भ्रवमूल्यन दूसरे दिन इन्दिरा गांधी तीसरे दिन पी. एल. नार भ्रातृ शून्य

चौथे दिन कुछ नहीं कहेंगे इसको सिवा कि यह संक्रामक रोग जिसे कहते थे समय दरमसल जनतान्न है

संसदीय लोकतान्त्रिक समाज-शैलिक मानव-धर्मो धर्म-सम्मत धर्म-
निरपेक्ष यह संक्रामक रोग

प्रचलित स्वयंप्रभा-समुज्ज्वला स्वतन्त्रता यह संक्रामक रोग सारी नोशनी और सारा श्रानाज

अदृश्य तावूतों अदृश्य गोदामों में बन्द करता है अग्रना अस्तित्व
सिद्ध करने के लिए.....

ररी आपने लेखकीय जीवन की परिपक्वता को नहीं पहुँच
‘उन्हें नहीं पहुँचने दिया गया। श्रुतः उनका चेतना-लोक

भेसा मुझे नहीं लगता । • •

* का चेतना-लोक : हरदयाल

चन्द्रमौलि उपाध्याय

राजकमल की उग्रताः

विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के इस युग की चरम परिणति चाहे जितने दुःखों और भासों में हो, किन्तु वैज्ञानिकता की स्वीकृति और धर्म-दर्शन, परम्परा आदि की अस्वीकृति अपनी जगह पर है। यों, प्रबल मोक्षाभ्यासिक चिन्तना, साधना और चमत्कार तक होते हैं और कमी-कमी समझदार श्रद्धा की ऐसा लगता भी है कि जीविका और जीविकावा से सन्तुष्ट विज्ञान की परवासापूर्णा स्वीकृति वस्तुतः नये दुनिया को कितना दृढ़ बना चुकी है कि वह बिलकुल स्थूल पर आ गयी है और श्रद्धा की दीनियों हज़ार साल की उपलब्धियों को एक साथ नकार देती है। वह चाहता है कि सृष्टि भी हमारी लेबोरेटरी में भाये और प्रमाण दे कि वह होता है। हाँ, आईस्टीन की बात नहीं, बल्कि सामान्य दुर्दिग्धीवी की स्थिति है।

आइस्टान का बात नहीं, बल्कि तानाशाह कुल्बाना से कहा है। राजकमल ने एक बार कविता पर बात करते हुए मुझसे कहा था कि कवि को भाषा और दृष्टिकोण में विज्ञान की सहानुताम सारी उपलब्धियों को स्वीकृति की गंगाभा होनी चाहिए। अर्थात् यह कि वे नयी चीजें हैं और प्राकृतिक इनके बीच हैं। अनुभववादी और व्याक्तिवादी स्तर की इस बात को हम दोहरे ने वहीं छोड़ दिया था, विवाद नहीं किया। और इसके एक डेढ़ महीने ही राजकमल को बीमार होकर अस्पताल जाना पड़ा। वहाँ मैंने लैंग्वियर

पिसवर्गं भारत. में प्राया या और उलने वाममार्गो न
स्तीकृति देकर भयने बारे में कवितान् लिखवायी है।
यह लघु-प्राणता के उदाहरण के अतिरिक्त ^{उप} न्तगत यह निजो यथायवादी

दिशान्वर-जनवरी '६८

पानी जगह पर
बिन्दु के

क्रि. अ. ४००
४०० ई. पू. का कहि समन्वय नहीं है कता है। ४०० ई. पू. का राजकमल से किसी 'भस्वीकृत प्रसमय' गोद लिये हुए ई. जी. ५०० ली, न उनकी फूल-फूलवारी से और न तो उनकी उग्रता या गति में प्रादिवासी कन्या से। 'मुक्तिप्रसंग' में यदि मंजू हालदार है, तो 'प्रसमय' बड़ा भारी भी क्यों नहीं हुआ ? —और, यदि राजकर, न तमाम विदेशी नाम जानता था, थोड़ा बहुत पढ़ा भी था, तो उनका 'गोनसिक संस्कार' कैसे छोड़ता ? कौन छोड़ता है ? विषुद्ध भारतीय कहलाने की हिमाकत जिन्दा लोगों में शायद बहुत कम लोगों के पास हो। श्रुतः प्रश्न यह न होकर यह है कि प्राशुनिक पाश्चात्य पीरल्लय साहित्यिक साहित्यर सन्दर्भों में राजकमल ने स्वयं को और भारतीय देवी उग्रतारा को किस कोण से प्रनुप्रवेश दिया है और समुची 'मुक्तिप्रसंग' रचना में उसका क्या महत्व है ?

इसके पूरे कि 'भुक्तिप्रसंग' के अध्यात्म के बारे में कुछ कहें, राजकमल की तान्त्रिक दीक्षा और साधना के बारे में कहना आवश्यक होगा। उसकी अध्यात्म और साधना की यात्रा बहुत संक्षिप्त थी, एक तीर्थ करने की तरह। किन्तु जब वह हुई, तो मृत्यु-पर्यन्त राजकमल उस मनस्थिति के नैरत्य में तोड़ नहीं पाया, यद्यपि उसने उपद्रव किये। किन्तु दीक्षा, साधना और उपद्रव 'भुक्तिप्रसंग' की रचना के बाद हुए और उनको साहित्य में लाने का समय उसे नहीं मिला। 'भुक्तिप्रसंग' तब की रचना है, जब राजकमल में जन्मजात और पारिवारिक संस्कार तथा उग्रतारा की याद जैसी बात बहुत तीव्र। आस्था की तरह उमड़ी थी। इस याद में एक तलसी भी थी। लेकिन पहले यह कहना चाहूँगा कि साहित्य की अपनी सीमाएँ होती हैं और धर्म-वर्शन, गनीति आदि किसी विशिष्ट कोण से ही उसमें प्रविष्ट होते हैं। जहाँ तक राजकमल का सम्बन्ध था, मैंने यह पाया कि राजकमल का साहित्यकार उसके साथ क और आस्थापरक व्यक्तित्व 'पर अन्त तक होनी रहा। साहित्य की गायः के समस्त द्वितीयः स्थान देने की प्राणता उसमें नहीं थी, बल्कि उसे नैर होकर ही अन्य कुछ होने का मोह हो सकता था। और इसीलिए 'री और उसने उसे पहले साहित्य में बँठा लिया, फिर साधना की नैर नालय यह कि कच्ची किन्तु संस्कारों से ढ़ उग्रतारा सम्बन्धी नैर, में उतरी। इसीलिए उसमें 'सूक्ष्म' सत्ता की विराटता, 'गा उग्रतारा को समुची देवसत्ता से जोड़ने की

• यल की उयतारा : चन्द्रमौलि उपाध्याय

बहिर

[illegible]

समूचा 'मुक्तिप्रसंग' पढ़ने पर मुझे यों लगा था, जैसे राजकमल एक लम्बा यात्रा से लौट कर महिषी गिर पहुँच गया है और उत्थारा के पास बहुत निम्न होकर बैठ गया है। बैठकर कह रहा है: 'तुम्हारे ने तो मुझे जाने के लिए विवश किया था। मुझे भेज दिया तो देखो कितनी चोट पड़ी। लेकिन मैंने सब मोग लिया है। तुम्हारा दिया हुआ मोगकर मैंने तुम्हें कुछ नहीं कहा है।' सुख-दुःख सारा, समूचा अमृत-गरल पिया, तुम्हारी याद तक को एक वृंद नहीं दिया। शिकवा ही हो जाता तो फिर मेरी मानवीय ऊँचाई कहाँ होती और कैसे गुम तक लौटता ? अतः मैं शिव हूँ, उत्थारा ! तुम्हारा दिया हुआ मोग कर मैंने तुम्हें मुक्त किया; अब मुझे मुक्त करो, मेरी पूजा करो। 'मुक्तिप्रसंग' का यह वाक्य 'उत्थारा, मेरी पूजा करो,' मन पर बहुत दूर तक बजता, कौशला और मूक करता चला जाता है। यही है 'मुक्ति प्रसंग' की तल्ही, जिसके चतुर्दिक दुनियावी और भौतिक तत्त्वों का जाल बुना हुआ है। राजकमल को करुणा और दय, दोनों एक साथ समन्वित होकर उबलेंगे। को देखते हैं। और यह देखना बहुत व्यक्तित्व है। वह एक नीली नदी है, जहाँ तक वह पहुँचना चाहता है और पहुँचता है तो यंत्रणाप्रस्त, क्षत-वि-क्षत किन्तु दर्पशील ।

प्रध्यात्म और साहित्य के परस्पर संस्पर्श का प्रायं है, साहित्यकार के परस्पर सत्ता को स्वीकृति देना और उसमें आत्म-विवर्जन। इसके प्रति कि, उसे। कल्याण और श्रुत पढ़े एक लंका-काण्ड भी आता है। किन्तु एक बार उपस्थिति वैकल्पिक रहती है। राजकमल का प्रध्यात्म शाब्दिक (तारा तन्त्र) तथा उसके दशान से सम्बद्ध है। पंचा के लिए प्रतिवार्य है। मांस, मदिरा, मैथुन, लज्जा, यथायवादी भी विवृति को प्रारम्भसात् करके बड़े व्यत्यय भी लज्जा, यथायवादी भी

‘पनी जगह’

‘सौंदर्य’ से पराजय पाएँ जब निम्नागामी

ऐ. ॐ

‘गती’ है, और उससे उन्नत यंत्रणा में परिणित

है। यह यंत्रणा ‘मुक्ति-प्रसंग’ के अन्तर्गत है। ‘नियंत्रण’ और ‘इष्ट’ को

कलात्मक भाषा की उदात्तता द्वारा प्रकट है, किन्तु जबकि राजकमल

का ‘स्व’ बहुत दर्शनीय है, अर्थात् ‘सौन्दर्य’ का प्रयोग करने के लिए नहीं करता।

‘जैसे सूकर प्राणी’ का भाषा का प्रयोग अपने लिए नहीं करता। उसकी

जिजीविषा बन्धुत्ववती है, अतः उसका आत्म-विसर्जन पहले उन्नतारा से

पूजा करता है। अर्थात् इतनी दारुण यातना का बदला उसे चाहिए : यातना,

जो समूचे विश्व पर प्रवृत्तमान और व्यापक है। यही यंत्रणा का दर्शन

राजकमल के प्रयास को उसके इष्ट से जोड़ता है। इसी यंत्रणा और आत्म-

विसर्जन के सिलसिले में वह अपने ऐन्द्रिक पतन, विवशताओं आदि को

तत्काल प्रसन्निकृत से जड़ देता है, समूचे युग पर प्रसन्निकृत लगा देता है।

प्रसन्निकृतों के बीच लोक-कल्याण खो गया है। जो जाने के लिए विवश है

और उन्नतारा एक स्थूल प्रतिमा होने से अधिक ऊपर नहीं उठ पाती।

बौद्धिकता और प्रसन्निकृतों को मोड़ में वह ‘ईश्वर’ को आक्रोश से पकड़ लेता है

और उसे उसकी ‘वैष्णवी मुद्रा’ के लिए बुरा-मला कहता है। तथा उसे व्यभिच

से लेकर वियतनाम की सारी उल-जलूल स्थितियों के लिये अपराधी ठहराता

है। शायद राजकमल ‘ईश्वर’ शब्द से ‘नियति’ का प्रयोग देना चाहता है।

फिर भी इस स्थल पर उसका सन्तुलन बिगड़ता हुआ-सा लगता है।

सब मिलाकर ‘मुक्तिप्रसंग’ का दर्शन, यंत्रणा, कल्याण आदि व्यक्तित्वगत

दर्शन का दर्शन है। दृष्टि है : बौद्धिकता और आक्रोश की। मुक्ति दो है। एक

जकमल की मुक्ति, जिसके पीछे कोई कथा-सी है, जो कभी उद्घाटित नहीं

है। गी—‘पितृशिला ढूँढ़ने’ की कथा। और दूसरी इस ‘समय’ अर्थात् युग की

मुक्ति। दोनों की नियति है यंत्रणा। अर्थात् यंत्रणागत मुक्ति। और ‘मुक्ति-

प्रसंग’ की सबसे महत्वपूर्ण बात है ‘उन्नतारा’। ● ●

‘कमल की उन्नतारा : चन्द्रमौलि उपाध्याय

सह

‘नता, वैज्ञानिक’

‘नियंत्रण’

‘इष्ट’

‘सौन्दर्य’

‘वैष्णवी मुद्रा’

‘व्यभिच’

‘उन्नतारा’

‘मुक्ति-प्रसंग’

‘यंत्रणा’

‘आक्रोश’

‘व्यभिच’

‘उन्नतारा’

‘मुक्ति-प्रसंग’

‘यंत्रणा’

‘आक्रोश’

‘व्यभिच’

‘उन्नतारा’

‘मुक्ति-प्रसंग’

‘यंत्रणा’

‘आक्रोश’

‘व्यभिच’

‘उन्नतारा’

‘मुक्ति-प्रसंग’

‘यंत्रणा’

‘आक्रोश’

‘व्यभिच’

‘उन्नतारा’

‘मुक्ति-प्रसंग’

‘यंत्रणा’

‘आक्रोश’

‘व्यभिच’

‘उन्नतारा’

‘मुक्ति-प्रसंग’

‘यंत्रणा’

‘आक्रोश’

‘व्यभिच’

‘उन्नतारा’

‘मुक्ति-प्रसंग’

‘यंत्रणा’

‘आक्रोश’

‘व्यभिच’

‘उन्नतारा’

‘मुक्ति-प्रसंग’

‘यंत्रणा’

‘आक्रोश’

एक सुसुटसु लेखक की जायरी

शालभ श्रीरामसिंह

१०, नवम्बर ६७ : ककावती : एक नये मनुष्य का आविष्कार

हम जमरते हैं और सिझुइते हुए मृत्यु में विलीन हो जाते हैं।

फिनारों की सीमाओं में घिरी नदी की तरह

अपनी सभी आकांक्षाओं की परिधि में

हम धीरे-धीरे चुकते चले जाते हैं।

[आज की जिंदगी सुबह : रावट जिटिम्स]

बावजूद इसके अगर यह ठीक है कि कलाकार अपने युग की सीमाओं के आगे

नहीं जा सकता, तो कभी-कभी ऐसा क्यों होता है कि कुछ कलाकार अपने

युग से बहुत आगे बढ़ जाते हैं, इतने आगे कि उन्हें बिद्रूप के वाणों का बिद्र

होना पड़ता है। इसका क्या कारण है ?

अपनी पुस्तक ‘नयी समीक्षा’ में अपने ही द्वारा उल्लेख गये इस प्रश्न का

देते हुए श्री अमृतदास ने लिखा है कि : ‘कलाकार परिस्थितियों के

होते हुए भी उनका दास नहीं होता, उसकी आधेन्द्रिकता के

पास रहती ही है।

‘ककावती’ की मैं राजकमल चौधरी द्वारा—

प्राथमिक स्वतंत्रता से प्रथमतः केवल एक—

पचास प्रतिमा ही मुद्रित-प्रकाशित होकर

‘नवम्बर-जनवरी’ ६८

२५

उत्तराखण्ड

लिया। जैसा कि सर्वविदित है, रोम के सर्वाधिकारों का नाम नहीं

मौजूद है। त्रिपिण्डित रूप से काम पर लगे हुए मज्जद्वरों की तनख्वाह को

आमिहिकता के सन्दर्भ में होने के लिए है, जिससे अपनी चेतना और

नहि। न।
मध्ययोग हे जन्म लेने वाला मनुष्य व प्रश्न या क्रमादेश करने का साहस है।

ना पठिणा मौन विचर-पठिका के पारम्परिक

लभे श्रीरामसिंह लहर

1

[दाभयतय : शशि के साथ : ककावता : पृष्ठ ३१]

ऐसे लेखकों को जिम्मेदार मानना है।
व्यक्तिगत का पहचान का। यह आर का प्रभाव है।

1

होगी ? पर 'कंकवती' के चर्च-मन्त्र में

लेखक का मत है कि यह एकदम स्पष्ट और नकारात्मक है, किन्तु अणुगतिक प्रकृति का प्रमाण है, जो कि समकालीन लेखन अपनी पूर्णता के सन्दर्भ में प्रकृति की प्रतिबिम्ब-वस्तु और विषयवस्तु के प्रभाव उत्पन्न करने वाला हो, वह, बल्कि राजनीति के दलदल में इस तरह से घेरा-फेसा हुआ भी है। 'कंकवती' तात्कालिक स्थिति की उल्लेख करके, उसके सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का निर्णय कर पाना अथवा देना कठिन है और उसे बंट-भंग पाना तो और भी मुश्किल काम है। फिर भी ऐसा हो रहा है और बढ़ने के साथ हो रहा है। ऐसा नहीं होने से सदीश-धर्म के उन्मूलन का खतरा जो है। उसके विरोध और समर्थन में अनवरत वक्तव्य प्रकाशित-प्रसारित हो रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप साहित्यिक ऐतिहासिकता को इतने चक्करदारी और संकरे रास्तों से होकर गुजरना पड़ रहा है। कब-कहाँ-क्या 'जेडुइन' छूट या रह जायगा, कह पाना कठिन है। 'कंकवती' जन्ही चक्करदार रास्तों पर दीवानावार फिरती ऐतिहासिकता के सामने एक 'विराम' के रूप में आती है। कहना न होगा कि वहाँ कविता परिभाषा से मुक्त-भाषा भाषा है, जो किसी भी देश-काल अथवा व्यक्ति की हो सकती है। हर प्रकार की सीमानाश्रयता को अस्वीकारती हुई वह, सामने आई असाधारणता को केवल और उससे जुड़े व्यक्ति को नये परिदृश्य में प्रतिष्ठित करके, जीवन की निरन्तरता और व्यक्तिगत आदिम चेतना की अनिवार्य शक्तों से जुड़ी रहना अपनी बूझान्त संगति एवं परिणति मानती है। प्रचलित मतवालों से वैचारिक स्तर पर पृथक् रहकर आधुनिकता के सन्दर्भ में वह सार्वभौम के प्रति उदार दृष्टि-कोण रखती हुई जातीय-वृत्त की रक्षा की भाँग की जरूरी समझती है। चिंतन की इन्द्राज्य स्थितियों के बीच से उभर कर आई हुई अमिष्यक्तियों के लिए वह एक ऐसी भाषा की जरूरत महसूस करती है, जो मुखादिधारी अशुचितता को जकारने और चिंतन क्षेत्र की सर्वस्वतीय युद्ध-स्थिति को व्यक्त कर सकने में सक्षम हो। उसे न 'प्रयोगवादी' कविता कहा जा सकता है, न 'नैकेनवादी' और न 'नयी कविता' और इनकी प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप अस्तित्व में आने वाली 'नयी कविता' प्रचलित काव्य-प्रवृत्तियों के साथ इसे जोड़कर देखने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। 'कंकवती' के भीतर उसकी अन्वस्थिति का पता लगाना दुष्कर कार्य है, वह इसे छूती हुई-सी प्रतीत होती है और उसी छुपान के बोध-विन्दु पर यह अर्थ भाव व्यक्त हो जाता है, जिसमें एक बेहद-बेहद साफ स्थिति को देखा जा सके। जैसे :

५८। एन. यु. यु. को नया 'लिभेन्-ओर श्रीरामसिंह

तहर

उभने पक्षों का महान आ काली नदी के पार। जलधारा में बूढ़े स्त्रियों ने नहीं किया है अब तक मृत की नदी का स्वीकार।

[सामन्ती : कंकवती : पृष्ठ : तीस]

ये पंक्तियाँ इतना तो प्रकट कर ही देती हैं कि तन्नाम 'राजनीतिक मूल्यों' तथा नैतिक मान्यताओं में शोषण की तलाश करने वालों की भाँति 'कंकवती' के कवि को जीवन तथा सामाजिक परिवेश के बीच अकेलेपन और अजनबीपन की आरंभित और आयातित स्थिति से स्वयं को जोड़ने की आवश्यकता नहीं महसूस हो रही है और न वह तज्ज्वलित संवास के चित्रण को, यथावत् ही महसूस कर रहा है। उसके अन्तर्गत का निर्याता बनाने के दुराग्रह से—'सहायक' ही सम्पन्न रहा है। उसके अनुसार कविता व्यक्तित्व के 'व्यक्ति-सत्य' को स्थापित करती है।—जानने वाले अन्धो तरह जानते हैं और अब तो यह बात ऐतिहासिक तथ्य का रूप ग्रहण कर चुकी है कि : 'राजकमल चौधरी की व्यक्तित्व एक विद्रोही कवि के रूप में है। उनकी कविता का विद्रोह आज की निकोणामक और शोषक व्यवस्था के प्रति है। जिसके एक छोर पर वैज्ञानिक मदान्विता, दूसरे छोर पर व्यावसायिक व्यक्तिवाद-वृत्ति तथा सब से शीर्ष पर राजनीतिक अहंवादिता स्थित है।' 'डा० राममूर्ति त्रिपाठी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के ४५१ वें पृष्ठ पर आगे यह भी लिखा है कि : 'कवि कर्म की कठिनाता का कारण केवल यही नहीं है। इसके बीच घिरा हुआ जो समाज है, उसमें भी जो अवशिष्ट है, वह तो इतिहास की जड़ है या यौन कुण्ठाएँ हैं। ऐसी स्थिति में काव्य की संवेदना का प्रश्न उठाना भी निरर्थक है।' इसके बाद यह निवेदन कर देता अनुचित नहीं होगा कि डा० त्रिपाठी की 'काव्य की संवेदना', 'कंकवती' : एक नये मनुष्य का आविष्कार' की 'जिजीविषामिमुक्षु संवेदना' से भिन्न और साधारणतः प्रचलित अर्थ-भाषाम को उद्धाटित करने वाली संवेदना के स्तर की ही है। अस्तु विरोधाभास की गुंजाइश नहीं रहे गई। और ना ही इस आयथ से मुक्त किसी प्रश्न का कोई मतलब ही होगा। विशेष स्पष्टीकरण के लिए पूर्व-उल्लिखित संवेदना को व्यक्त करने वाली 'दिया-नेपा' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ ही पर्याप्त हैं :

चौराहों की मोड़ में खड़े लोग मुझे क्या देते हैं, कोष या अयनापन—मेरे लिए यह

दिसम्बर-जनवरी '६८

५६

मोड़ से प्रलग, अपने
न बना देता हूँ, प्यार या
दोष—सबके इलाका ही दबे की छेड़ की कर्मों।

‘भू-संत’ का यह महासास जहाँ संवेदन की स्थिति को स्पष्ट करता है, वहीं राजकमल के उस स्वार्थी की कलाकार के व्यक्तित्व के चारों ओर विशिष्टता की विमान्य रेखा खींचने में भी समर्थ है, जो ‘अस्वस्थ और ‘इककड़’ ही सही लेकिन इन विशेषणों से युक्त हो सकने की सामता से भरपूर एक नये ‘नुर्य’ का आविष्कारक है। समकालीन कविता की सर्वाधिक दुखद स्थिति यही है कि आज उसके पास आविष्कर्ता और स्वतन्त्र-चेता कलाकारों का न केवल भ्रमाव है, अपितु वह वैचारिक दासता से अनुप्राणित शक्तियों के हाथों सांस्कृतिक विघटन के शतरंज में मुहरे की तरह दौब जीतने के लिए किये गये प्रयासों का माध्यम बन कर रह गई है। इसलिए भी ‘कंकवती’ का तालमेले उसके साथ बिठाना अनुचित और भ्रान्ते के लिए विवादास्पद है। अस्तित्व में आने वाली भविष्य के गर्भ में छिपी किसी काव्य-प्रवृत्ति या धारा-विशेष की पृष्ठभूमि के रूप में सम्प्रति इसे स्वीकृति प्रदान करना ही प्रवेशकृत भ्रविक न्याय और युक्तिसंगत होगा। फिलहाल तो उसका भौंडा प्रतिकरण ही प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसका होना और न होना लगभग एक-सा है।

१६, नवम्बर '६७ : कंकावती : भाषा—शिल्प और कुछ प्रश्न

शब्द और वशों के प्रत्याराल, विराम और शब्द-विराम आदि संकेत-चिह्नों की उभा-कारके 'कंकावती' की भाषा को सहज, सपाट, बिम्ब-वर्मिता के संकेट से मुक्त समकता या कहता, साध्रतिक समीक्षकीय दिवालियेपन को प्रमाणित करने वाली स्थिति का परिचायक मान हो सकता है, 'कंकावती' की भाषागत भक्षेष्टता का उल्लेख नहीं। संकेत और विन्यास के बरातरल पर टिके हुए 'कंकावती' के भाषा-शब्द प्रयोगोनपुख और पाठकीय समभक की माँग करने वाले हैं। इसी परिलक्षित शैलिक वक्रता भी भाज की बहु प्रचारित वक्रता र भाषा से सर्वथा भिन्न है। सायास। अनायास। 'कंकावती' की भाषा एक नान इती हुई भी कुल तीस प्रतिशत

६०। ॥ क युयुत्सु लेख की शताब्दी : शतम श्रीरामसिंह

लक्ष्मण

राजकमल की काव्य-कृति मुक्तिप्रसंग

केदारनाथ अग्रवाल

‘मुक्तिप्रसंग’ एक ऐसे कवि-भादमी की काव्य-कृति है, जो अपनी इस रचना में खूबकर, निर्वाच गति से व्यक्त हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक उसके व्यक्तित्व का उतना ही श्रुत संस्करण है, जितना वह उसके काव्यत्व का श्रुत संस्करण है। व्यक्तित्व और काव्यत्व, दोनों एक दूसरे के परम पूरक होकर मुक्ति के प्रसंग को पूरा कर सके हैं।

राजकमल का जीवन—जिसे उसने जिया, बिना किसी हिवक के—सम्भोग के—सम्भोग के धोर से लेकर छत से झूलती रस्सी के फन्दे तक और फिर सज्जकल अस्पताल तक व्यतीत हुआ है।

संस्कारी नहीं, राजकमल का सम्भोग श्रसंस्कारी रहा है। उसके सम्भोग की दिशा मर्यादित नहीं, श्रमर्यादित सम्भोग की दिशा रही है। श्रमर्यादित सम्भोग में राजकमल को श्रह से मुक्ति मिलती रही है।

श्रुत में राजकमल मृत्यु को भोग कर श्रह से मुक्ति पाकर हो रहे।

राजकमल ने यह कविता अपने मरने से पूर्व फरवरी-जुलाई १९६६ ई० में पटना-अस्पताल, राजेन्द्र सज्जकल ब्लाक, के ‘ई’ वार्ड में लिखी थी। इसका प्रकाशन १५ अगस्त १९६६ ई० में हुआ।

यह लम्बी कविता—संस्वर और स्वभाव की—हिन्दी की पहली ऐसी कविता है।

आदि में श्रुत तक इस कविता संस्वर में आकोश-ही-आकोश है और वह आकोश उस से एक रत्ना था। से वह केवल प्रलय होकर वर्तमान

६२।

लिखित श्रम

तहर

को छलत करना प्रतीत होता है श्रम होता है। लेकिन नता है कि कवि के मन में मार्कंडेय मुनि का अस्तित्व है, जो श्रम में श्रममय होता है। मार्कंडेय मुनि की यह कल्पना ही इस कविता को एक ऐसे श्रममय बनाती करती है, जिस धरातल पर श्रम के बाद भी कवि की पुनर्जन्म पान की श्रमशा उत्पन्न होती है। यदि यह श्रमशा भी इस कविता से निष्कासित कर दी गई होती तो इस कविता में कोई भी श्रम, श्रम, मूल्य श्रम न रहता। इस श्रमशा के होने पर भी इस कविता का मूल्य-स्वभाव श्रम और विवादी स्वर है, जो अपने पूरे श्रमशा के साथ शत-प्रतिशत श्रमकारमय है और यह श्रमकार, एक ऐसा श्रमकार है, जिसमें मृत्यु की सत्ता, उसका इतिहास, की सम्मता और सत्कृति, उसका निर्माण उसका क्रिया-कलाप और उसकी श्रम तक प्रस की हुई सिद्धियाँ और सफलताएँ, सब-को-सब बेकार हो जाती हैं और उनका महत्व श्रम में परिणित हो जाता है।

मैं मानता हूँ कि श्राव के जो रहे लोग एक मरा हुआ, संवस्त, पराजित, एवं विषटित जीवन जी रहे हैं और यह जीवन कुछ देसा ही जीवन है, जिसे राज-कमल जीवन जीता नहीं समझते। यह जीवन व्यक्ति का जीवन है और यही जीवन समाज का जीवन है और यही जीवन प्रत्येक राष्ट्र का जीवन है और यही जीवन स्थान-स्थान पर अनेकानेक विषटित रूपों में प्रगट हुआ है। इस-लिये राजकमल व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और अन्तरराष्ट्र के मिटा दिये जाने की अपनी दलदली लालसा उद्घोषित करते दिखाई देते हैं। वह स्वयं इस विवक्ष की वापसी बजाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस सब श्रमव्यक्ति और श्रमदर के मूल कारण में न जाकर, इस सबको अपने इन्द्रिय-बोध मान से तार्किक की तरह श्रमण करते हुए दहल जाते हैं और इस सब के विरुद्ध वैचारिक कुठाराघात करते हैं। यह कुठाराघात चाहे जितना ईमानदार रहा हो, निश्चय ही एक विक्षिप्त हुए व्यक्ति का किया गया कुठाराघात है। यह कुठाराघात प्रलय से प्रेरित हुआ कुठाराघात ही है। इस कुठाराघात के पीछे समस्त मानवोद्यम मनोबल की और समस्त मानवोद्यम विचारों की प्रेरणा नहीं रही। राजकमल ने इस कुठाराघात को अपने अनेक समरणीय श्रमनुभवों से जोड़कर निरन्धे संवेदनशील एवं मार्मिक बनाया है, किन्तु वह श्रमणीय होकर भी त्याज्य बना रहता है। केवल वर्तमान को ही स्वीकार करके और उसकी दशमुखी संवस्तता को जीकर ही कोई भी व्यक्ति ऐसे वर्तमान को और उसकी संवस्तता को तब तक विनष्ट करने का अधिकारी नहीं हो सकता, जब तक वह व्यक्ति वास्तविकता और यथार्थ को उनके श्रम, परिप्रेक्ष्य में देखने का कष्ट नहीं करता। मैं समझता हूँ राजकमल इस कविता की सच्चे बड़ी

दिसम्बर-जनवरी ६८

६३

‘मञ्जोरी’ यही है जि-
को ‘ता नन्द’
बैठा है

राजकमल के अन्तराल में कोई भयोरी
रहे भयोरी को मूल-आस्था जिजीविषा के प्र-
आशी भवय है, परन्तु यह
आदमी भी जिजीविषा के स्वस्थ स्वरूप से सर्वथा अलग है। यह जो रहा
आदमी—यह जो रहा तांत्रिक—रहे राजकमल के अतिरिक्त कोई दूसरा
आदमी या तांत्रिक नहीं है। राजकमल ने अपने वर्तमान के दो रूप देखे
और दिखाये हैं। उनके देखे और दिखाये गये दोनों रूप उनके ही उस व्यक्ति
को ही उद्घोषित करते हैं, जो अपने एक रूप में जीना तो चाहता है, भार
रूप में सबका सब कुछ विध्वंस देना चाहता है। यह दोनों रूप
अत्यन्त संकुचित और सीमित हैं। इस दोनों रूपों को न मनुष्य का मनुष्य-रूप
मिला है, न मनुष्य की मानवीय भावु मिलती है। यह दोनों रूप-वर्तमान के
सम्पूर्ण विघटन से ही प्रेरित होकर विस्फोटित हुए हैं। राजकमल को इस
विध्वंस के बाद की परिणति का कोई भी ज्ञान नहीं हो पाया और इसलिये
राजकमल मार्केण्डेय मुनि की कल्पना करके ही अपने को सन्तुष्ट कर सके
और यह उद्घोष कर सके कि वह आदिशिणु को बट-वृक्ष के नीचे पत्ते से
उठा कर पृथ्वी पर लायेगे।

मैं इस उद्घोष को केवल बीमार व्यक्ति का उद्घोष ही कहूँगा।

वास्तव में विध्वंस के बाद भी मनुष्य मुक्ति नहीं पाता। विध्वंस के पीछे और
आगे अतीत और भविष्य होता है। अतीत और इतिहास अर्वाच्य के
विध्वंस की प्रेरणा देते हैं। भविष्य विध्वंस के बाद नये के निर्माण का
सन्देश देता है। राजकमल के पास न इतिहास है और न भविष्य है। इसलिये
राजकमल न वर्तमान की समस्याओं से संघर्ष कर सके, न भविष्य का स्वरूप
देख सके।

विध्वंस अपने आप में कोई महत्व नहीं रखता। उसका महत्व इसमें है कि वह
जीवों-शरीरों को ध्वस्त करे और मनुष्य को अवसर दे कि मनुष्य जीवन जीने
अपने परिवेश, अपने समाज, और राष्ट्र में सक्रिय-रूप से संघर्ष करे
और इस प्रकार जिये कि उसका भविष्य उसके मन के मुताबिक स्वस्थ, सुन्दर
और शिव हो। समस्याएँ विध्वंस से समाप्त नहीं होतीं। आये दिन नई-नई
समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। आये दिन मनुष्य नयी-नयी समस्याओं का सामना
करता है और आये दिन समस्याओं से झुझता है और समस्याओं को सुलझाता
है। मनुष्य की यही निर्यात है। इस निर्यात से बाहर चले जाने की शक्ति
मनुष्य में नहीं है। इसलिये मनुष्य, परिवेश को संघर्ष के द्वारा बदलना चाहता

६४। ‘मुक्तिप्रसंग’ : देवराणाथ शर्मा

लहर

है। परिवेश का बदलना विध्वंस से ही होता है। लेकिन विध्वंस का सहायक
वही व्यक्ति होता है, जो परिवेश पर काबू पकड़ने में समर्थ होता है। इसलिये
कोई भी व्यक्ति विध्वंस करके न स्वयं ही जी सकता है, दूसरे
को जीने दे सकता है। मुक्ति पाने का प्रयास संघर्ष का प्रयास है; और संघर्ष
का प्रयास समस्याओं पर विजय पाने का प्रयास है; और समस्याओं पर विजय
पाने का प्रयास मनुष्य का अपने अधिकार पाने का प्रयास है; और मनुष्य का
अपने अधिकार पाने का प्रयास दूसरों के अधिकार को सुरक्षित रखने का
प्रयास है; और दूसरों के अधिकार को सुरक्षित रखने का प्रयास ही एक
समुन्नत समाज में आदिबारे के साथ जीने का प्रयास है; और प्रयास
वास्तव में मुक्तिप्रसंग के अतिरिक्त, कोई दूसरा मुक्तिप्रसंग नहीं है।
राजकमल ने इस प्रयास का अपूर्ण अवहेलना की है। जिस प्रसंग को राजकमल
ने मुक्त के प्रसंग की संज्ञा दी है, वह प्रसंग वास्तव में मनुष्य की मुक्ति का
प्रसंग नहीं है। वंसा प्रसंग निरर्थक प्रसंग है और वैसी मुक्ति शून्य की मुक्ति है।
यह कविता कदापि मनुष्य की मुक्ति के प्रसंग की कविता नहीं है। राजकमल
ने मुक्ति नाम की सार्थकता उधार ली है और इस उधार ली हुई सार्थकता से
मनुष्य को उसके सन्नास से उबार सकने की सामर्थ्य दिखावाई है। निस्सन्देह
राजकमल का यह प्रयास अपने आप में एक अनूठा प्रयास है और यह अनूठा
प्रयास हिन्दी को उत्पन्न होकर भी एक निस्सार प्रयास मात्र है। यह कविता
अपने ढंग की अनूठी कविता होकर भी एक असफल कविता है।

यह कविता इसी अर्थ में एक नयी कविता है कि यह नये के संस्कार लेकर भी
नये मनुष्य की नयी कविता नहीं है। इस कविता में छन्द भी टूटे हैं और
नये मनुष्य भी छोटी-बड़ी हुई हैं और इसकी विन्म-योजना आशोक की विन्म-
योजना होकर भी जीवन जीने वाले आदमी के आशोक की विन्म-योजना नहीं
है। सब कुछ कह कर भी-लिख कर भी—राजकमल इस कविता में मानवीय
उदार की बात नहीं कह सके—न लिख सके। इस कविता में आत्म परिचरित
किये जाने की उत्कट हार्दिक अभिलाषा है और विषय की घटनाओं के संक्रमण का
वारंवारक है और विभाजन एवं खण्डित मनुष्य की बहुमुखी विघटित सम्बन्धनाएँ
हैं। फिर भी, इस सबके बावजूद भी यह पूरी कविता आदमी की कविता नहीं
है। इस कविता में राजकमल के मानसिक विकास का प्राक अवयव मिलता है।
लेकिन इसमें मनुष्य के संघर्ष का लक्ष्य भी चित्र नहीं मिलता है। यह हथारा
और हिन्दी का, दोनों का, दुर्भाग्य है कि ऐसा जागृत और सचेत कवि भी
अपनी सशक्त वारणी से सामाजिक सत्य को, न केवल इन्द्रिय-नयन से ग्रहण कर
सका और न अपने बौद्धिक बोध से ही ग्रहण कर सका। राजकमल ने

दिसम्बर-जनवरी '६८

६५

अपना भूषित के प्रसंग और मनुष्य की प्रकृति के प्रसंग में 'एक प्रसंगकी' गद्य की प्रशंसा किया है और इस 'प्रसंगकी' गद्य के द्वारा ही अपनी और मनुष्य की भविष्य का स्वरूप बताया है। यह कविता इस स्वप्न की प्रतिनिधि होकर भी सत्य की प्रतिनिधि हो गई है। इस दृष्टि में न जीय है, न साहस है, न विवेक है, न बुद्धि है और न क्रम है।

प्रश्न उठता है कि आखिर राजकमल मर कर फिर जन्म लेकर संसार में आने के लिये लालायित क्यों हुए? राजकमल की इस कविता में इस प्रश्न का उत्तर केवल विषय और विस्फोट से दिया गया है। विषय और विस्फोट के बाद के संसार का कोई भी चित्र नहीं प्रस्तुत हुआ।

है। मानता है कि यह कविता केवल कविता है और जीवन जीने की कोई भीसिस नहीं है। फिर भी प्रत्येक कविता के साथ जीवन जीने की लालसा भी जुड़ी होती है और वह लालसा जीवन को जिलाये रह कर स्वयं जीती है, और जीवन को प्रत्येक प्रकार से प्रेरित करती रहती है कि जीवन का विषय एक-न-एक दिन प्रसन्न हो जाय। इसलिये यह कविता होने के बल पर कविता होकर नहीं जो सकती। यह तो मनुष्य के पतन की कविता है।

यह कुछ भी समझ में नहीं आता कि तेरह हजार वर्ष पहले मेरठ पर्वत की काली चट्टानों के पत्थरों से तरापी गई एक तेरह वर्ष की लड़की 'उग्रतारा' मला करोड़ों मनुष्यों का कैसे उद्धार कर सकेगी? राजकमल ने ऐसी लड़की के द्वारा मनुष्य जाति के उद्धार की कल्पना की है। ऐसी कल्पना और ऐसी प्रवृत्ति के पीछे निरसंदेह मनुष्य की उस आदिम अज्ञानता का ही बोध होता है, जो मनुष्य को कन्दराओं में, पशु-पक्षियों और कलित देवताओं की आकृतियों रेखांकित करके जीवन व्यतीत करने के लिये और तब के परिवेश पर काबू पाने के लिये विवश करता था, जब विज्ञान से वंचित मनुष्य वंसा करने के लिये बाध्य था, किन्तु आज वंसा करने के लिये मनुष्य बाध्य नहीं है। तब मनुष्य ज्ञान-विज्ञान की उल्लिखित से अज्ञान था। तब मनुष्य के लिये 'उग्रतारा' की कल्पना करना और मार्गण्डेय मुनि होकर मनुष्य के अज्ञान जीवन संवारना क्षम्य था। परन्तु अब, आज युगों बीत जाने के बाद, किसी 'उग्रतारा' की कल्पना करना और मार्गण्डेय मुनि होकर मनुष्य के पुनर्द्वार कर सकने की इच्छा प्रगट करना विफल कल्पना करना और विफल इच्छा करना ही कहा जायगा।

कविता मनुष्य की कृति है। मनुष्य के मन की सृष्टि है। मनुष्य के लिये है। 'मुक्तिप्रसंग' कदापि ऐसे कविता नहीं है। कवि श्री अशोक को समर्पित होकर भी यह कविता मनुष्य को समर्पित नहीं हो सकती। ● ●

लहर

६६ मुक्तिप्रसंग १०६ इनाथ अग्रवाल

६७

दिग्दर्शन-जनवरी ६८

मुक्तिप्रसंग आर्य-स्वीकृतियां भरी एक लम्बा वक्तव्य

परमानन्द श्रीवास्तव

'मुक्तिप्रसंग' की समीक्षा, उसे एक सम्पूर्ण नयी कविता मानकर की जा सकती है, इसमें मुझे संदेह है। राजकमल की गायद नयाम कविताओं की मिलाकर एक सम्पूर्ण कविता के रूप में देखा जा सकता है। तब गायद कवि का कविता का 'संसार', 'कविता' में ही देखना सम्भव हो सके। अपनी तो उसमें तन्माय दिक्कतें हैं, जब 'मुक्तिप्रसंग' की ही आधार मानकर यह टिप्पणों लिखी जा रही है। यों ही नहीं है कि सबसे पहले प्रकाशित काव्यकृति के प्रत्येक पद पर ही एक जाना पड़ता है, जिस पर राजकमल की रोग-नाजा लितो है। इसे सिर्फ 'प्रदर्शन' ही नहीं कहा जायेगा, क्योंकि कितने प्रयत्न में 'प्रदर्शन' तो सारा 'काव्य व्यापार' ही है, जबकि अलग से हम मानते हैं कि उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मुक्तिप्रसंग की काव्य-वस्तु पर नजर डालने में पहले पत्र रूप में लिखी हुई प्रज्ञेय जी की लिखी हुई कुछ पंक्तियां भी ध्यान आकर्षित करती हैं: 'मृत्यु का स्वीकार...वेतना की एक गहरी आकांक्षकता है; और उस स्वीकार से एक तरह की स्वस्थता भी मिलती है।'...स्वीकार के बाद मृत्यु को हटाकर एक और रख दिया जा सकता है और बिना जा सकता है...। यह पत्र-भ्रंश राजकमल ने प्रकाशित करना जरूरी समझा तो इसलिए नहीं कि वह 'सर्टिफिकेट' है, बल्कि इसलिए कि इसमें उन दृढ़ का प्रसंगिक संकेत है, जिससे राजकमल को अपनी रचना-प्रक्रिया और जीवन-प्रक्रिया में बिटन पड़ा है और 'मुक्तिप्रसंग' लिखकर भी जिससे वह मुक्त नहीं हुआ है। अपने वर्तमान में जीवित रहकर राजकमल ने अनुभव किया था: 'मृत्यु की सहज स्वीकृति से देह की सीमाओं, सगुणियों और अति-वार्धताओं से मुक्त हुआ जा सकता है।' यही उसने यह भी लिखना जरूरी समझा: 'दो समानधर्मा शब्द: जिजीविषा और मृष्टा-इस कविता के मूलगत कारण हैं।' वर्तमान की समस्त विधितियों में जीवित रहना राजकमल की नियति थी—जीवित ही नहीं मुक्त और स्वर्गीय भी। राजकमल के शब्दों में यही मन-स्थिति इस कविता की प्रकृति है।

‘साराण ही नहीं, मुक्तिप्रसंग’ ऐसी कविता नहीं है, जिसे दूसरी बार पढ़ना सहज हो सके। साराण, साराणी और विरहो के बावजूद ऐसी भगवानक एकरसता इस संपूर्ण कविता में है कि यह वस पृथ्वी ही बार पढ़ी जा सकती है। मैं यहाँ किसी काव्य-ग्रन्थ के रूप में ‘एकरसता’ की चर्चा नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि यहाँ यह एक युग की सन्तुष्ट प्रवृत्ति का प्रतीक है। दूसरे पक्षों में एक ऐसा विन्दु है, जिसे आधार मानकर मुख्य काव्य-वस्तु की व्याख्या की जा सकती है। कभी यह भी लगता है कि यह ‘भयंकर एकरसता’ जानबूझ कर रचा गई है, स्वाभाविक नहीं है। ‘जानबूझ कर लगने की संज्ञा यानी...’ या थोड़ी थोड़ी की कविता के प्रभाव को ग्रहण करने की प्रवृत्ति के साथ भी बैठ जाती है। सब मिलकर चित्र जैसा भी प्रपन्ना, प्रपने परिवेश और उसके मोहभोग का, अपने समय की कूट वास्तविकताओं का—उत्ते दूसरी बार देखते हुए ग्रहण होती है। इस तरह एक नितान्त प्रमुख प्रमुख की कविता है : मुक्तिप्रसंग—जिससे कवि लिखते समय और पाठक पढ़ते समय गुजरने के लिए प्रसिद्ध है।

प्रतीत और भविष्य से कट कर वर्तमान की समस्त विकृतियों में जीने के लिए प्रसिद्ध राजकमल की भाषा नितान्त भगवानवीय सूत्रों से संश्लिष्ट होती है। न केवल यह कि उसके लिए चिड़िया, हरित, फूल, अरुण, नदी, पहाड़ी स्थियाँ, कच्ची सड़के और गाँव नहीं रह गये हैं (यानी वह सब कुछ नहीं रह गया है जिससे वह काव्यात्मक जैसी संवेदना हासिल कर सकता था) बल्कि यह भी कि वह तात्कालिक यथाथं का ऐसा प्रतिक्रिया करने में प्रसमर्थ है, जिसके बाद ही प्रकाश्यात्मक वस्तुओं की काव्यात्मक संवेदना को उपलब्ध करना सम्भव होता है (यानी उन्हें अपनी दुनिया में शरीर कर भास-संघर्ष को ग्रहण संघर्ष का रूप या प्रथं देना सम्भव होता है)।

‘मुक्तिप्रसंग’ : यह एक कविता ही नहीं, राजकमल की ज्यादातर कविताएँ उसे एक भविष्य की स्थिति में दिखती हैं। भविष्य के ही चलते उसकी दुनिया में सहज स्थिति भी प्रतीत बन कर आती है। जब वह कहता है :

‘वैश्वानिक राजनेता और स्त्री-भ्रमों के व्यापारी-कुल तीन ही प्रमुख जातियाँ रह गयी हैं’

तो वह मुख्य प्रहार के लक्ष्य को कुछ घुंघला कर देता है—उसे, जो एक, और प्रकृति प्रयुज्जति है—दुनिया की सारी कुटिलताएँ, सारी जाल-नीतियाँ ही जिसके प्रचीन हैं। इस तरह प्रकाशक-विन्दों की कमी उसकी कविता में नहीं, पर उसका ‘विद्रोह प्रायः इतना बिखरा हुआ लगता है कि भ्रातानी से उस पर दिग्गदीनता का प्र किया जा सकता है और कभी-कभी

६८ । मुक्तिप्रसंग : पं मानन्द...

लहर

तो उसके ‘होने’ में भी सहज हो सकता है। प्रतिस्पर्धायता, राजकमल की पर से की हुई कोई साक्षिण नहीं है, जगदा सही भक्त... नमकी, और उसकी कविता की या संपूर्ण जीवन की नियति है। भवितव्य रूप से तो वह हर प्रकार की साक्षिण के विरुद्ध है। प्रसंग के प्रत्यक्ष में यह लिखता है :

प्रादमी को इस लोकतन्त्री संसार प्रस्ता हो जाना चाहिए

जो जाना चाहिए करताओं गंजाजोर नेपथ्यों

मिलभगों धकीमनी रीढ़ों की काली और धन्वी दुनिया में मसानों में

सबकी लानों नोच कर

साते रहना थेयरकर है जीवित पड़वियों को ला जने से

हम लोगों को अब शामिल नहीं रहना है

इस वरती से प्रादमी को हमेशा के लिए लाम कर देने की

साक्षिण में !.....

तो इस सवाल की व्याप्ति समझकर—कि कविता उसके लिए क्या है और क्या नहीं है और यह मानकर कि कविता के मूल्य उसके लिए जीवन के मूल्यों से प्रलग नहीं है। पर कहीं उसकी विद्रोह चिन्ता में कोई गहरी कमी है कि वह बस साक्षिण में ‘शामिल न होना’ ही काफ़ी समझता है, जबकि एक प्रविष्टि-धर्मी कवि से भाषा की जाती है, उसके विरोध में एक सार्थक शब्द रखने की, दूसरे शब्द में ‘प्रपन्ना पथ’ लेने की। न सिर्फ मुक्तिप्रसंग, बल्कि केदारनाथ सिंह, प्रमिल, और कमलेश प्रादि की कविताओं में कविकर्म की यही सार्वकला दिशाई देती है, राजकमल भी कुछ कविताओं में इन्हीं कवियों की भाषा के निकट आना चाहता है, पर इसके लिए अपने स्वभाव को उलने पूरी तरह डाला नहीं है।

राजकमल की कविता में कोई प्रवसरवाद नहीं है—पर एक उतावली या बेचैनी जरूरी है कि इस कूट कुटिल दुनिया का सामना करने में वह कहाँ तक उसके साथ हो सकेगा है। इसके लिए हर बार वह नये नये जोखिम उठाता है। कभी कभी इसका कोई नतीजा नहीं निकलता—ज्यादा से ज्यादा उसके कवि-मानस में कोई नया पंख पैदा हो जाता है। मुक्तिप्रसंग में यह सब बड़े पैमाने पर हुआ है। जाहिर है कि यहाँ उस संश्लिष्टता की कमी है जो प्रथं की निश्चित परिणामों तक से जाती है। न राजकमल ने इसके लिए कोशिश की है, न वह इससे विरहास करता है।

सब मिलकर ‘मुक्तिप्रसंग’ भास-स्थीकृतियों की कविता है। दूसरे शब्दों में ‘प्रास-स्थीकृतियों’ भरा एक लम्बा वक्तव्य है—उन तमाम ‘कुटिल चालों’ को पहचानने की कोशिश है, जो सहजमानने में बाधक है। ● ●

दिसम्बर-जनवरी '६८

६९

मुक्तिप्रसंग : एक सही माध्यम की तलाश

शिवकुटीरालाल वर्मा

‘सती-वर्तमान के अग्नि-ज्वर शब्द को अपने कंधों पर मैं शिव की तरह धारण करता हूँ। मैं इस शब्द के गर्भ में हूँ और यह शब्द मेरे कंधों पर है। इसकी विह्वल, वीरलता और दुर्गन्धियों में मुझे जीवित रहना पड़ेगा। जीवित ही नहीं, मुक्त और स्वाधीन भी रहना होगा.....’

पुस्तक के प्रारम्भ में ही राजकमल चौधरी के संश्लिष्ट वक्तव्य की ये पंक्तियाँ पाठक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं, और इन पंक्तियों के संदर्भ में ही सारी कविता को देखना चाहिये। जहाँ हम कवि की रचनात्मक-संवेदना पर अपनी ‘शाश्वत सैद्धांतिक दृष्टि’ थोपने लगते हैं या स्वयं को उसकी सौंदर्य-चेतना से परिचित कराने का कष्ट न कर, उसी को अपने अनुसार विठाने या ढालने के लिये प्रयत्नशील हो जाते हैं, वही, सारी गलतफ़हमियाँ उपजती हैं। मैं समझता हूँ कि जिन संदर्भों में रचना ने जन्म लिया है, उन्हीं के भीतर से हमें उसे देखना चाहिए। वह रचना बन सकी है या नहीं? मस्तिष्क के कितने धरातलों को वह एक साथ स्पृश करती है और उन्हें एक स्वस्थ चिंतन के लिये प्रेरित करती है, यह कसौटी ही रचना के परीक्षण के लिये पर्याप्त है। ‘स्वस्थ’ शब्द एक अपूर्ण पद (Abstract Term) लग सकता है। जिन परिस्थितियों में आज का व्यक्ति जी रहा है, उनके संबंध में उनके प्रति अनासक्त होकर निवार करने की विधा को मैं स्वस्थ चिंतन की दिशा मानता हूँ। संवेदन १०

‘रचना के लिये ११ वही हम उन्हें देखने भी लगते हैं, और यह देखने की दृष्टि ही हमें जीवन ही भीतर उनके प्रति अनासक्त भी बनती जाती है।

इस दृष्टि से क्या ‘मुक्तिप्रसंग’ को प्रायः एक कुठिल-व्यक्ति की उपज मान कर ढाला जा सकता है? क्या वह केवल एक बीमार मनोदिशा का चित्रण है? क्या उसमें सीमाओं की विराज स्वीकृति-भाव है? जो शक्तियाँ मनुष्य के विवेक को भुक्ताने में जी-जान से उतरा हैं या उसकी उद्दाम जीवन-चेतना को समाप्त करने के लिये कठिबद्ध हैं, उनके साथ ही उसमें कहीं कोई चेतावनी का स्वर भी नहीं उमरता? और यदि वह है, तो उसे केवल प्रलाप या निरर्थक आक्रोश कह कर कैसे नजरअन्दाज किया जा सकता है? अस्तित्व की समाप्ति के खतरे और उनके प्रति मय की अनुभूति और उन्हीं अनुभूति में उसकी रक्षा के प्रति चिंता चितली प्रायः के युग में एक सच्चा और प्राधुनिक व्यक्ति में व्याप्त है, उनकी पहचान कभी नहीं थी। अस्तित्व की प्रवर्धना की अनुभूति के बावजूद भी आज का व्यक्ति उसे खोना नहीं चाहता। वस्तुतः अस्तित्व और व्यक्तित्व कहीं एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये हैं। अस्तित्व की सम्भावना के बावजूद ही, व्यक्तित्व की अपनी कोई समस्या हो सकती है और इन समस्याओं से लड़ते हुए, व्यक्तित्व को या रचनात्मक धरातल पर इस प्रकार की अनुभूतियों की अवधारणा को कुठिल कह देना, कुछा शब्द का सरलीकरण करता है। ऐसे लोग या तो कुछा शब्द के मनोवैज्ञानिक भ्रम से प्रपरिचित हैं, या उसे एक मूल्य मानकर चलाते हैं। यों समाज में परिभाषा एक कुछा की अभिव्यक्ति और अपनी निजता की कुठिल अभिव्यक्ति, इन दोनों में फर्क है। इस सम्बन्ध में मुझे राजकमल चौधरी का एक लेख याद आ रहा है, जहाँ उन्होंने कहा है:

‘सम्भवतः लुडित ग्रह के अलग-अलग चुकड़ों पर जम आई हुई कोबड-काई ही कुछा बनती है, जो अन्दर के सावृत पत्थर, यानी आदमी के अस्तित्व, अंतरंग अस्तित्व को चमकने-निखरने नहीं देती है। जो आदमी को किसी लालसा, किसी देह-भोग, किसी भंगिमा, किसी नोपन, किसी भोग, किसी मृत और अतीत शारीरिक सम्भावना में हमेशा के लिए, जब आदमी अपनी कुछा से अधिक मजबूत हुआ, तो कुछा प्रसन्न के लिये रोक देती है।’

(‘नवलेखन के संदर्भ में’: राजकमल चौधरी, ‘लहर’, मई-जून १९६७)

कुछा के प्रति कवि का यह दृष्टिकोण ही कवि के मानसिक तनावों को छल्लिम होने से बचाता है। मृत्यु के साक्षात्कार और सहज स्वीकृति ने उसकी दृष्टि की घुबली करने के बजाय उसे एक गार दो है। वह विषट्ककारी

‘निको’ द्वारा उत्पन्न ‘आहमिय’ के माध्यम से भाषा माशानकार करता है, और उनके षडयन्त्रों का पर्दाफाश करने में न तो वह (अपनी संवेदनाओं के आरोपण के लिए) ‘इति’ का महारा होता है, और न ही प्राध्यात्मिक प्रतीकों का। इसकी भाषा तेज और स्पष्ट है, और सोखनी गणिता से परे है। वस्तु-स्थिति के मुसौटों और चमकते भावार्ण को हटाकर उसे देखने और दूसरों को दिखाने की कवि की श्रद्धादाहृत ‘जेनुइन’ है और यही कारण है कि ‘मुक्तिप्रसंग’ का मय, संशय, ध्वंश-विपश्य, तथा ‘सर्कार’ और ‘हियोजिनी’ पर किये जाने वाले प्रहार कैशन जैसे लग कर एक भान्तरिक भावप्रकटना न उद्भूत कवि की रचनात्मक प्रक्रिया के प्रतिभाय परिलाम लगे होते हैं।

‘उग्रतारा’, जिसकी ‘इमेज’ कविता में कई बार आई है, के बारे में कवि का मत है: ‘मुक्तिप्रसंग’ कविता के केन्द्र में उग्रतारा की मूर्ति (Image) है, और इस ‘इमेज’ की समस्त प्राणिकताओं को ग्रहण करके ही यह कविता ग्रहण की जा सकती है।’

(‘दर्पण’, सितम्बर १९६७: ‘जगुताय मिश्र को लिखे गये पत्र से’)

जहाँ तक मैं इस ‘इमेज’ को ब्रूक पाया हूँ, ‘उग्रतारा’ उस सहज सौन्दर्य और स्वाभाविकता का प्रतीक है, जहाँ से हम अपनी सम्पत्ता-यात्रा में इतनी दूर निकल पाये हैं कि व्यक्ति का ग्रहं उसके निजी स्वार्थों का पर्याय बनकर रह गया है। अपने ईमानदार क्षणों में यह महसूस करने के बावजूद भी कि वह मोतर से चुक गया है और उसके सारे कार्यकलाप और सभी भावने वाली बातें केवल आत्म-प्रवचना हैं और उसकी जिन्दगी एक भट्टी गाली से ज्यादा कुछ नहीं। फिर भी वह कहीं इतना चतुर भी हो चुका है कि अपने नकली और सड़े हुए व्यक्तित्व की प्रसली और युग-सापेक्ष सिद्ध करते और उसे दूसरों के ऊपर लादने या दूसरों के कर्त्यों पर खड़े होकर अपने प्राणको ऊँचा दिखाने तथा दूसरों को बीना सिद्ध करने में वह अनवरत-रूप से प्रयत्नशील है। यद्यपि वह इस बात से डरता भी है कि भीड़ का उसके साथ यह ‘श्रद्धा-संबंध’ कहीं समाप्त न हो जाए। यों भीड़ के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध, या समझौते (Adjustment) पर आधारित ऐक्य सम्बन्ध, और अपने मोतर के किन्हीं श्रद्धासों और बुनियादी सवालों की बिना पर स्वयं को उससे कटा हुआ या भ्रंशित महसूस करना, दो भ्रम का वर्णन है। पर यह भ्रमभाव का प्रहसास और अन्यायी समस्याएँ, वे चाहे जो भी हों, व्यक्ति को अपने ढंग से सोचने और उस ‘अपने ढंग’ का पक्षेष्टण करने के लिये विवश ही करती

है, उसे अपना प्राणप्रकरण (Subjectivity) के प्रति समर्पित होने के लिए प्रेरित नहीं करती। ‘मुक्तिप्रसंग’ का कवि भी भीड़ से विच्छिन्न और अलग रह कर भी एक गहरी सामाजिकता की अनुभूति का भाग्य उससे अपने को मुक्त नहीं अनुभव कर पाता, क्योंकि भीड़ की अपनी सम्पत्तियों हैं, और वे सारी सम्पत्तियाँ सिद्ध कर प्रकृति की सम्पत्ति में, किसी तरह तक भोजन और किसी भी प्रकार जीवन-भारत कर पाने की विवशता में केन्द्रित हो गई हैं। कवि का यह अनुभव-नादात्म्य इतना गाढ़ा हो उठता है कि उसका अनुभव देश की मध्यवर्गीय मूल्यी पीढ़ि जनता का प्रतीक बन जाता है।

‘मेरे देश और मेरे मनुष्य का भविष्य निर्धारित करने के लिए प्रकृति निर्धारित करने के लिए मैं इतिहास-मुक्तक की तरह खुला हुआ पड़ा हूँ लेकिन मेरा देश मेरा पेट मेरा ज्वाइर मेरी प्रतियोगिता खुलने से पहले सजनों को यह जान लेना होगा

हर जगह नहीं है जल प्रयत्न रक्त प्रयत्न मांस

प्रयत्न मिट्टी

केवल हवा, कोई जहम और गन्दे पनाने हैं अधिक स्थानों पर इस देश में जहाँ सड़ कर फट गई हैं नसें वहाँ हवा तक नहीं ऊपर की लम्बा चोरने पर भाग नहीं निकलेगी नहीं बुझा जठराग्नि..... दावानन.....

सब चुक गये भ्रमरानक पहले पन्द्रह अगस्त की पहली रात के बाद अब राख ही राख बच गया है पीला भवाद’

‘मुक्तिप्रसंग’ में देह की राजनीति से लेकर (जिसका प्रतिनिधित्व मंजू हाल-दार करती है) मानसिक राजनीति (जिसका प्रतिनिधित्व समाचार-पत्रों और सुलह और सद्भावना के नाम पर चलने वाले और एक झूठे प्रकार का वातावरण तैयार करने वाले राजनैतिक सम्मेलनों द्वारा होता है) और नैतिक मूल्यों तक की राजनीति (जिसका प्रतिनिधित्व ‘नकली नकाबपोश ईश्वर’ करता है) की चर्चा है। भ्रमरानासता की राजनीति से रूपश देश में व्याप्त श्रष्टाचार और अन्तराष्ट्रीय धमने पर चलने वाली दलबन्दी को लीखे रंगों द्वारा भ्रंशित किया गया है। जहाँ वह पूँजीवादी शिकंजे में जकड़ी हुई लोकतांत्रिक पद्धतियों पर ध्वंश करता है, वहाँ मानवता को प्राणवश की ओर ले जाने वाले वैज्ञानिकों और जीवन की यांत्रिक बना देने वाली संस्कृति पर भी। वह प्राणुनिकता के कुत्रिम माणदण्डों, मोतर ही मोतर मनुष्य को

प्रमाण कर देने की साजिश और स्वी-जंगों का जगाना करते बानों में गुणा करता है और मनुष्य के प्राकृतिक और भौतिक रूप के पुनरावर्णन के लिए 'बिहिमी, हिरा, पू, भरने, कबी' सहर्ष और गीब की ओर संकेत ही नहीं करता, बल्कि आज की समस्याओं का समाधान भी उन्हीं के भीतर खोजता है। जहाँ तक मनुष्य की स्वाभाविक जटिलता की 'केयासिस' का प्रश्न है, प्रकृति उसमें एक सीमा तक सहायक भले ही सिद्ध हो जाय, पर उस जटिलता से व्युत्पन्न विषय समस्याओं के निदान रूप में उसे देखना समस्याओं से मुँह मोड़ना है। अपने संवेतना के उत्कर्ष रूप में बौद्धिक के तमाम सोपानों से गुजरता हुआ मनुष्य कमजोरों पर शासन की प्राथमिक वास्तव और अपने 'नचारों' की श्रेष्ठता को दूसरों पर स्थापित करने की लालसा से आज भी मुक्त नहीं हो पाया है और धर्म या बाद की झाड़ में इसी मनोवृत्ति ने उसे कहीं व्यक्ति-स्वातंत्र्य के अपहरण और कहीं साम्राज्यवाद के लिए उकसाया है और मेरे अनुसार इसका हल प्रकृति का मुँह निहारने या इस प्रकार की: 'जीवित पड़सियों को खाने की साजिश से' किनाराकशी कराना मात्र नहीं, बल्कि उसके विरुद्ध एक सशक्त मोर्चा तैयार करना है। 'मुक्तिप्रसंग' की केन्द्रीय दृष्टि अपने परिवेश के प्रति जगत् एक व्यक्ति की दृष्टि है और इसीलिए हमें उसमें वैयक्तिक पीड़ा, स्वीभ और उस पराजय की कटुता भी मिलती है, जिसका कारण है देश के विगलित शासन-तंत्र और नौकरशाही संस्कृति को दल पाने की उसकी प्रसमर्थता। इतना ही नहीं, कविता में उस तंत्र साधना की भी स्पष्ट छाप है, जिससे कवि का व्यक्तित्व प्रभावित है, पर ऐसा नहीं लगता कि ऐसे स्थल कहीं भी कविता को सम्पन्न बनाने या उसके व्यंग्य को सार्थकता प्रदान करते हों। यों कविता का मूल स्वर व्यंग्य और आक्रोश होते हुए भी उसमें वह Pathos भी है, जो उनके भीतर से भल-भला उठता है।

'मुक्तिप्रसंग' में कोई प्रलक्ष्य नियोजन नहीं है। सम्पूर्ण कविता चेतना के उस घरातल से निम्नित होती हुई जान पड़ती है, जहाँ अनुभवों का देर और अनुभूतियों का आवेग तो है (और जहाँ कविता खुद ही अपने बात कह जाती है, कवि को इसके लिए उच्चर से प्रयत्न नहीं करना पड़ता) पर साथ ही कवि का उन पर वह अनुशासन (Control) भी नहीं है, जो रचना को इतना संयत बना देता है कि वह 'मास्टरपीस' की संज्ञा पा सके। उसके अनुभव प्रामाणिक और उनका परिप्रेक्ष्य विस्तृत होते हुए भी वे अव्यक्त हैं। कई बार ऐसा लगता है कि जैसे बात बीच-बीच में टूट जाती है और इस सब के लिए उत्तरदायी बहुत रचनाकार का वह अर्धव्य है (यद्यपि वह

अर्धव्य शब्द दृष्टि से सर्वथा उचित कहा जाना चाहिए), क्योंकि इसके प्रभाव में हम 'मुक्तिप्रसंग' जैसी कृति प्रायः न पा सकते हैं।) विनय के कारण अपनी बात कहने के लिए वह और अधिक प्रतीक्षा सहन नहीं कर सका। (यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि 'कोई प्रतिभा गढ़ने योग्य नहीं हुए मेरे अनुभव' जैसी ईमानदार श्राव्य-स्वीकृति से कवि का संकेत उनके रचनागत संगठन की प्रगतिपक्वता की ओर नहीं, बरन् उनकी नकारात्मकता (Negative aspect) में निहित उन व्यर्थता की ओर है, जिसने उसे रचनात्मक मूल्यों के प्रति श्रान्त्यवादी बना दिया है। इतने सारे अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए उसे एक मही माध्यम की तलाश की और 'मुक्तिप्रसंग' का महत्व उस सही माध्यम के एक संपान के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए। वस्तुतः वह उपलब्धियों से अधिक प्रभावनाओं की कविता है।

कविता के शिल्प की दृष्टि से 'मुक्तिप्रसंग' का अनुभव-सम्प्रेषण अधिक 'डाइरेक्ट' है। उसके प्रतीक और विषय नये बल्लर हैं, पर वे कविता को टुकड़ नहीं बनाते। जहाँ 'नया कवि' प्रकृति के उपादान और बाहर की वास्तविकता को अपने श्रान्तर्गत के और रचना प्रक्रिया के उद्घाटन के लिए माध्यम रूप में चुनता है, वहीं 'मुक्तिप्रसंग' का कवि अपने श्रान्तिक व्यक्तित्व को वस्तु-संसार में मिलाकर स्थितियों को देखने का प्रयास करता है। उसका कथन श्रान्तवश्यक प्रतीकों और विषयों का सहारा न लेते हुए भी सपाट नहीं है, बल्कि उसको वस्तुओं (Object) की ठीक-ठीक पहचान करती हुई दृष्टि इसके सर्व-सदृशों को विस्तार देती चलती है। स्थितियों को उनके मूल और नये रूप में देखने की यह प्रवृत्ति उसे 'नये कवि' से भ्रमण करती और साठोत्तरी पीढ़ी के नवदीक लाती है। (वैसे मैं नयी कविता की परम्परा को 'मुक्ति-प्रसंग' में इस रूप में विद्यमान मानता हूँ कि नयी कविता की सीढ़ी के बिना उसके आगे की दृष्टि का विकास या यह मोड़ शायद इतनी अज्ञानी से सम्भव न हो पाता।) हालाँकि सन् साठ के बाद की पीढ़ी ने जहाँ अपनी भाषा और दृष्टि संरचना में पिछली पीढ़ी के अनुभव-उद्घाटनों और भाषागत-धाराओं को कहीं से तोड़ने की कोशिश की है, वहीं भूलो, पराजित या विद्रोही पीढ़ी के नाम पर वह स्वयं एक दूसरे प्रकार की घिरावट में बंधती भी गई है और यही पर राजकमल 'मुक्तिप्रसंग' के रचना-सन्दर्भ में साठोत्तरी पीढ़ी के अन्य कवियों में कहीं भ्रमण और ऊपर दिखने लाते हैं।

वनरुधाम शालम

63

कवि की प्रायः चेतना अपने इस 'दशमुख विडम्ब' के लिए अपनी प्रांतिरिक्तता ज्ञापन के साथ उसे धन्यवाद देना चाहती है। देखिये कैसे मर्मस्पर्शी अनुभव-सङ्ग है यह :

चौराहे पर मरा हुआ रक्तशल्य कुण्डलिनी का काल-सर्प ऋण्ड-खण्ड
खण्डित द्वजना-दण्ड खण्डित मूर्तियाँ

भूत हार

प्रायोरेशन-टेबुल पर ईथर-निद्रा में अनेकानेक मानव-संक्रुति का कमी उसे 'सम्भोग की चरम परिणति में स्वाभाविक मुक्तिपाद होगा मेरा मरण' की प्रतीति देती हैं तो कमी 'कोई काव्य-‘खंड या प्रतिमा बनने योग्य नहीं थे अन्तुभव-संगीत रंग, पीड़ा' मेरे अन्तराल में—'रोनाख परिस्थितियाँ' उसे उनको 'प्रतीतिद्वय जेतना की अन्तहीन यात्रा-प्रक्रिया से पराजित कर देते हैं ।

दिसम्बर-जनवरी '६८

दीबा, देशपत्र, प्रकीर्ण की गोतिरा, चलिन की किरण, ताकनद सम्मेलन, रीठ की हड्डि में गैब्रिन, मादपू नू दास कैपिल, सुकरान, गार्गाग्रो की कहानियाँ कश्मीर के लिए सेनाएँ, भजन्ता, सेगांव में जल भरती बौद्ध भिक्षुणियाँ प्रादि यो उसकी जेतना को भकभोर देती हैं ।

बढ़ सोचता है क्यों एक ही युद्ध मेरी कमर की टुड्डियों में और कभी विजयनाम में होता है, क्यों इन्दिरा गांधी क्यों गुम बह, मैं क्यों कुछ नहीं, कुछ नहीं।' 'उसकी पराजय के तीस वर्ष, कैलेंडरों में सोये हुए बच्चे, हिरन, फूल, बिड़िया, भरने, पहाड़, गाँव, झौटों, चाय के बगान, बचपन का प्यारा झलबझल बिसम, 'जन्म', खीरी माँ का हाथ थामे हुए चकित मैं हरसिंगार के नीचे खड़ा हूँ।

आदि चेतना-स्रोत भवाव गति से बढ़ता रहता है।

जटिल हुए किन्तु कोई भी प्रतिभा बनाने योग्य नहीं हुए उसके अनुभव नहीं निद्राएं और नहीं पैशाची सम्भोग

यातनाएं भी नहीं...में उसकी पीड़ायाक मनःस्थिति चरमसीमा पर है। उसकी अलक्ष्यता के स्रोत में बहते हुए देरों भाव-लण्ड इस कविता की विशिष्ट उपलब्धि है। नकावपीश नकनी ईश्वर, विषयनाम, उड़ी-पुंछ, यू० एन० प्रो०; तिब्बत, बस्तर, अमीका में राइफल के निशानों के साथ आगे बढ़ना, उसी नकनी ईश्वर द्वारा नागालैंड, कोरिया, क्यूबा, पार्किस्तान, वियतनाम व अल्जीरिया में विदेशों वम भेजना, कभी अग्रणी संस्कृति, मशीनों, ट्रैक, जहाज, हथियार-कभी उड़ीसा में दुर्घिका कभी काहिरा में शक्ति-सम्मेलन, युद्ध, अणु-प्रायुध आदि चित्र उसकी अलक्ष्यता पर जैसे निरंतर हवाई मारते हैं।

उसकी आहत चेतना कितने स्वामयिक रूप से अनुभव करती है कि

‘वैज्ञानिक, राजनेता और स्त्री अंगों के व्यापारी

कल तीन ही प्रभु-जातियाँ रह गई हैं अब स्वयंभू अस्तु

में क्रीतदास ह०

म कातरात है
और कि त्विड़ियाँ, हिरान, फूल, अरने, नदी, पहाड़, त्रियाँ, कच्ची सड़कें और गांव मेरे लिए नहीं रह गये हैं-रह गये हैं अपने शरीर के क्षान्त-विक्षत मांसपिण्ड । कण विवशता का ममानिक विद्रोह इस अभिव्यक्ति के अन्तराल में आंक रहा है, हालाँकि प्रोक-कृतियों में सन्निहित महानता और उच्चता के दर्शन यहाँ विरल ही हैं । अस्तित्ववादी कृतिकार की यह वारणा कि मनुष्य अपने सामाजिक दुनिया स्वयं बनाता है और वह अपने को ऐसी परिस्थितियों में धिरा, द्रुभा पाता है, जिन पर उसका कोई वश नहीं-यह सब मुक्ति-प्रसंगा कविता में भी दृष्टव्य है । हर रात अ-स्मारक के नीकें नगी होती हुई

७८ । 'सुक्ति प्रसंग' को कवि अथनश्याम शालभे

तद्वत्

पापन, कान्ती, मोनो हर्ड्रि प्रो जो उगाड़ ग्रामदात्र में दोनो बाहे फँलाकर रो
के लिए, रोते हुए सो जाने के लिए, पानी प्रो प्रनात्र के देवता से मील
मांगती है—निरंगा फलानों के प्रपात्र में पार डाले गये १९४२ के छात्रों के
नाम पर । प्रो जिसे वाग्ड दका गान्ध-मन्त्रिवालय की प्रारम्भक घड़ी उप
करती है, कुल एक मिनट बाद इस नाम पर कि पीन लाल पन्चीम हजार भारतरासी
सी मिलिटों के निर्मम पन्त्र-चक्र में एक सी बीम लाल पन्चीम हजार भारतरासी
प्रनाग्राम उलादित होते हैं ।

और कवि यह निश्चय करता

और कवि यह निश्चय करता है कि :

अपने हीठों में उसके हीठों में अपने शब्द

वाक्य सत्ताए

गणदे महाद्वारों से उसकी बंजर चरती को नहलाऊंगा

अथवा दुहेरी प्रणाली के अन्तर्गत, कविता लोकतन्त्र दोनों के लिए, मुक्तिवाजनक स्थापनायाक यही होगा, उसको कालना की यह दीप्ति अथवा हो प्रभावतादाक है कि 'वेद की राजनीति से विकट सन्निकट और कोई राजनीति नहीं है संघर्ष अन्न और अप्रतिम की राजनीति यही शुद्ध होती है, जन्म नेता है यही' मुग-मारीब और

‘यह प्रश्न ही है हमारा वक्त’मान

केवल वर्तमान में जीते हैं श्रव समस्त प्रजाजन

मर जाते हैं अतीत में और भविष्य में मर जाते हैं।

और 'सिद्धार्थ' के कृतिकार की तरह वह महसूस करता है : 'किन्तु भीड़ से विच्छिन्न प्रसन्न रहकर भीड़ से मुक्त मैं नहीं हो पाता हूँ' जीवन में अवमूल्यन और मल्य भवता—दोनों ही पर कवि ने व्यंग्यात्मक दृष्टिनिक्षेप किया है।

भारतीय रूप से के श्रममूल्यन के साथ भारतीय संस्कृति और मुन्दरता श्रमरीका-यूरोप में मूल्य वृद्धि कैसे करती जा रही हैं, कैसे चलनेवाले मार्गों जैसे लेबर श्रम के पंजाबी पेड़ न्यूयार्क में लगा आते हैं और किस किस तरह हिट्लरुलानो रूप से पर लगातार रविशंकरों सितार बजाते हैं, और किस तरह हिट्लरुलानो रूप से पर जवाहरलाल नेहरू की तस्वीर छपी हुई है, जिसकी कुल ३६.५ प्रतिशत कीमत नीचे गिरी है, और कैसे हमें देशी सिडीकेट और विदेशी बैंक का बन्धन बनकरना चाहिए, और कैसे सोलन के तीसरे पाइपट में श्रमने गांव की बातें शुरू करते हैं फणीश्वरनाथ रेणु-कमली.....ताजमनो.....नैनोपोलिन • •

दिसम्बर-जनवरी '६८

62

नया सृष्टि संकल्प एक आदिम संस्कार

विजयबहादुरसिंह

‘सारिका’ के श्रंगल-मई ‘६७ महीने वाले अंक में डा० धर्मवीर भारती ने राजकमल को पश्चिमी युवा-लेखन श्रमरीका के बीटनिकों के सन्दर्भ में स्मरण किया है। उनके श्रनुसार देह की राजनीति ही इस कवि का श्रसली प्राप्तव्य है और इसीलिए यह श्रसामाजिक है। यदि राजकमल के ‘मुक्तिप्रसंग’ का यही आशय हो, तब तो भारतीयों का विरोध सचमुच नैतिक दायित्व से सम्पन्न है, किन्तु मैं समझता हूँ राजकमल ने कभी इस आशय की कल्पना भी न की होगी। राजकमल ‘देह की राजनीति’ के न तो प्रवर्तक हैं और न उसके समर्थक हो, श्रपितु वे इसके विरोधी थे। हाँ, स्थिति का साक्षात्कार हो यदि किसी की स्वीकृति मान ली जाय तो राजकमल का क्या दोष ?

‘देह की राजनीति’ कोई व्यक्तिगत समस्या नहीं है और उसका संबंध राजकमल के व्यक्ति से या भी नहीं। इसके विपरीत यह एक प्रच्छन्न सर्व-स्वीकृत तथ्य है, जिसे राजकमल ने नितांत परिचित माध्यमों के सहारे उद्घाटित किया। वे इसके लिए निन्दनीय हो सकते हैं कि उन्होंने एक श्रप्रकृत किन्तु, घातक समाज-रोग को सबके सामने नंगा कर दिया। यद्यपि वे इससे कहीं श्रलग नहीं थे। उनका व्यक्तित्व भी इस समाज-रोग से घिरा हुआ था और वे तब तक युक्तता का श्रनुभव कर भी नहीं सकते थे, जब तक कि सारा समाज इससे मुक्त न हो जाय। वास्तविकता तो यह है कि आज का कोई कवि या लेखक किसी भी स्थिति या घटना से श्रसम्पृक्त नहीं हो सकता। उसकी संलग्नता और संनक्ति इतनी प्रबल है कि कहीं-कहीं उसकी कलात्मक तटस्थता भी

खतरे में पड़ जाती है। मुक्तिरोध जैसे बुद्धिवादी कवि भी यह स्वीकार करते हैं :

मे देखा क्या है कि—

पृथ्वी के प्रसारों पर

जहाँ भी स्नेह या संगर

वहाँ पर एक मेरी छटपटाहट है

वहीं है जोर गहरा एक मेरा भी

वहीं है विकासी इन्द्र-क्रम में एक मेरा छटपटाता बल,

स्नेहाश्लेष या संगर कहीं भी हो

कि वरती के विकासी इन्द्र-क्रम में एक मेरा पल

मेरा पल, निःसन्देह !

राजकमल ऐसी स्थिति में श्रलग कैसे रह सकते हैं ? कवि किसी दूसरे लोक का प्राणी नहीं है। उसका भी श्रपना घर, श्रपनी समस्याएँ और राग-द्वेष हैं। कवि होने से पहले वह सामाजिक है, एक प्रवृद्ध और सद्य सामाजिक, जिसकी बेतना के छोड़ बहुत व्यापक है। इसीलिए सारा समाज उसकी कविता का प्रेरणा-स्रोत है और सारी कविता उसका श्रपना इतिहास। राजकमल की कविता को समझने के लिए हमें इसी रास्ते चलना होगा, क्योंकि राजकमल, उसकी कविता, उसका घर, उसके लोग, देश-काल कहीं श्रलग-श्रलग खण्डों में बटे हुए नहीं हैं, बल्कि वे सारे इकाई के रूप में ही उसके सामने हैं। यही राजकमल के कवि का सबसे बड़ा श्रवदान है कि उसने सम्पूर्ण युग-जीवन की खण्डित होती हुई इकाईयों को फिर से जोड़ कर पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। ‘कंकावती’ और ‘मुक्तिप्रसंग’ दोनों ही कृतियों में उसने इसीलिए वर्तमान भारतीय परिवेश को बहुत निमी ढंग से याद किया है। कंकावती में उसका स्वर यद्यपि बहुत गरमोर और मन्थर है, पर उनकी स्मृति में न जाने कितने प्रसंग, कितनी घटनाएँ और कितने ही जीवन-वरातल उभरते चले आये हैं। कंकावती में राजकमल ने पूरे देश की भापरेशन पिघेटर में लिटा दिया है, जब कि मुक्तिप्रसंग में वे स्वयं भी उसमें लेट गये हैं। कंकावती में बीमार लोग, कुष्ठ-ग्रस्त सामाजिकता और नग्न यौनाचार है। आदमी की गर्हित दशा, शृणित क्रियाएँ और पतन स्थिति है। वह अपनी समग्रता में देश के दुर्भाग्य का प्रमाण-पत्र है, जहाँ ‘सरस्वती-वन्दना’ भी अष्ट हो चुकी है :

बिलास-गद्म पर लकी हुई शब्द

प्रिया रोती है। बीणा के क्षत-विक्षत

रतन। इस की सफाईत श्रीवा ब्रह्म-हूँ

य। श्रमरी पर मासेमित पृष्ठक प्र
एष-दण ।.....

यही देह की राजनीति है, जिसे भेषाजी समीक्षकों (?) ने पहले नहीं पहचाना और जब राजकमल ने उसे सबके सामने सही नाम से पुकारना शुरू किया, तब वे श्रमराशिओं में गिने जाने लगे। ये ही समीक्षक किसी समय राजकमल से इसी दृष्टिक राजनीति वाले साहित्य का प्रचार अपने पत्रों में नहीं कराना चाहते थे और क्या उन्होंने ऐसा कराया नहीं? नरेश सनसेना की दायरी की ये कुछ पत्तियाँ ही इस सन्दर्भ में पर्याप्त होंगी: मले भनचाहे ही उनसे यह हफ्ता ले, लेकिन क्या भारती जी यह बात नहीं मानेंगे कि पहले उनके चित्र, 'विताए', टिप्पणियाँ आदि 'धर्मगुण' में प्रकाशित कर उन्हें साधारण पाठक से लेकर विश्वविद्यालयों तक में चर्चित कराने और श्रम उनकी मानोचना करके उन्हें नई पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिष्ठित कराने के एक माध्यम भारती जी स्वयं ही रहे हैं। सम्पादक के नाते जो दायित्व-निर्वाह भारतीजी ने किया, उसे लेखक के नाते गलत सिद्ध करते वाला यह दोषुद्दृष्टान राजकमल को कभी स्वीकार नहीं था। राजकमल एक ऐसे युग का व्यक्ति था, जिसमें आदर्शी रंग नहीं बदलता, नाटक नहीं करता, भारोपित आदर्शवाद और भाषातित यथार्थवाद की कसमें नहीं खाता। इसी कारण वह आजकल की कवि-परम्परा से भ्रान्त थे, भिन्न थे। कवि कर्म पर विचार करते हुए जब सारे लोग बौद्धिकता और मातृकता, श्रममूल्यन की समस्याओं पर बात कर रहे थे, तब भी राजकमल ने विवादों के बीच अपनी आवाज को भ्रान्त रखा और इस रूप में कि:

वेद्याओं के ऊँचे पलंग हैं, या जली हुई
लकड़ियाँ। कहीं जगह खाली नहीं है गज
मार। जहाँ बैठकर लिखी जा सके गीता,
या गीताञ्जलि। ऊँचे पलंग हैं, या रसीदे
घर की जली हुई लकड़ियाँ।

कवि की महत्वाकांक्षा प्रशंसनीय है। वह भी व्यास और रवीन्द्र की परम्परा को आगे ले जाना चाहता है। युग-व्यापी संदेश देना चाहता है, शाश्वत रचना का स्वप्न देखना चाहता है, पर यह सब जमीन पर। आस-पास के लोगों पर निर्भर करता है। यहाँ मैं कोई भावसंबादी व्याख्या नहीं कर रहा हूँ और न यही मानता हूँ कि कवि या कलाकार अपने युग की परिस्थितियों से ऊपर नहीं उठ सकता। पर मैं मानता हूँ कि राजकमल में न उस प्रकार की महानता है और न राजकमल स्वयं उस प्रकार की महानता के प्रत्याशी थे।

८२। नया सृष्टि संकलन: विजय-नन्द-दुर्गासह

लहर

राजकमल जिस महानता के लिए परेशान थे, वह प्रति सामान्य थी। उसे महानता भी क्यों कहा जाय, मन्वे प्रथा में तो वह साधारणता थी और यही साधारणता राजकमल के सबसे निकट रही है। इसलिए वे कुछ भी और नहीं हो सकते थे, निम्नाय इसके कि वे जो कुछ थे, उन्हें वही रहने दिया जाय। वे वस्तुतः मानव-जाति के प्रकृत-स्वरूप के प्राकृतिक थे। अपनी एक कविता में उन्होंने लिखा है:

सब लोग जिस तरह
मरे हुए श्रमर के किस्से गढ़ते रहते
हैं, तुम नहीं कहो। सब लोग जिस त
रह हवा में उड़ते केतुल के कलित दंग
सहा करते हैं, तुम नहीं सहो। लेकिन
न इतने दिन बीते, श्रम तब कैसे कर
जाय, कि ग्लोब पर टखने मोड़े, सिर
चिरकाए हुए, भूल के गगलपन में
जंजर बाँहे फैलाए लेटी हुई एक-
आदिम सच्चाई (जो तुम नहीं), तुम
नहीं रहो?

यह आदिम सच्चाई क्यों? आज जब कि विश्व-वैज्ञानिक भ्रान्तेयों के चरम उत्कर्ष पर पहुँच रहा है, आदिम सच्चाई को बात करना पिछड़ेपन का द्योतक नहीं है? वैज्ञानिक विकास की यही प्रतिक्रिया है और यह प्रतिक्रिया बहुत ही स्वाभाविक है। मैं इसे और भी स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि यह प्रतिक्रिया किसी दार्शनिक या वैज्ञानिक की नहीं है, किसी प्रायोगिक विचारक की नहीं है। यह एक कवि की, एक मनुष्य की प्रतिक्रिया है। आज जब कि किस्सा गढ़ना, केंचुल के कलित दंग सहना, हमारी प्रवृत्ति हो गया है, अतिशय मिथ्यात्व और कृत्रिम श्रमभ्रान्तों के बीच हम जीने के भावी हो रहे हैं, तब सहज और श्रुतिमय मनुष्यता के लिये प्राकांक्षा प्रकट करना ही हमारी स्वाभाविकता है।

'आदिम सच्चाई' के रूप में कवि ने 'कंकवती' को ऐतिहासिक सन्दर्भों में देखा है। ये ऐतिहासिक सन्दर्भ अपने में दार्शनिक सन्दर्भ भी समेटे हुए हैं। ये सन्दर्भ सुजल और पुनरुत्थना के हैं। न केवल राजकमल चौधरी, भपितु धर्मवीर भारती स्वयं भी इस आदिम सच्चाई की तलाश करते हुए कनूप्रिया के पास पहुँच जाते हैं, जो मानव की राग-वृत्ति के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुई है। धर्मवीर भारती 'अन्धा युग' में उदास। निराशा है। उनके सामने कुछ नहीं

दिस-वर-जनवरी '६८

है, जिसके लिए वे जगकुल हो, पर 'कनुप्रिया' में राधा है। राधा के वे सहज मनोभाव हैं, जिसके लिए वे बेचैन हैं। उसको हर क्षण सच्चाई के रूप में, एक प्रमित और प्रमन्द सच्चाई के रूप में देखना चाहते हैं। राजकमल और उनमें यदि कहीं प्रान्तर है, तो यही कि उन्होंने इसे अपनी व्यक्तिवादिता के माध्यम से प्राप्त किया है और राजकमल ने अपनी सामाजिकता के माध्यम से। राजकमल का सब कुछ व्यक्तिगत होते हुए भी, सब कुछ सामाजिक है; जब कि माताजी का सब कुछ सामाजिक होते हुए भी सब कुछ व्यक्तिगत है। राजकमल का व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही अपनी-प्राचीर है और माताजी का व्यक्तिगत और अपनी-प्राचीर है तथा सामाजिक तत्वात्त अपनी-प्राचीर है। पर चूंकि दोनों ही 'सहज मनःस्थिति' के आकांक्षी हैं, इसलिए दोनों समीप भी हैं, मले ही इस समीपता के बीच, कितने ही द्वारद्वेषी प्राचीर हैं।

विशेष प्रकार की स्थिति के कारण है। ऐसी स्थिति में जब सुरेन्द्र चौधरी जैसे लोग 'एक और देहावा' का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि राजकमल प्राण लिए जिम दुनिया की मांग करता है, उसकी कोई व्यवस्थित तस्वीर या नैतिक श्रतिवायंता मो उसके रिमाण में है, या वह केवल नकारना जानता है ? तब मैं कहना चाहता हूँ कि राजकमल जो कुछ भी चाहता है, और जिस ढंग से चाहता है, वह उनकी उस लीक से हटकर है, जिस पर चलते रहने से सारी दुनिया की समस्याओं का समाधान मिल जाता है। राजकमल न केवल सुरेन्द्र चौधरी, बल्कि तमाम लोकवादियों से अलग हैं। ग्रामनेपद के लेखक का यह वक्तव्य मैं यहां केवल सुरेन्द्र चौधरी के लिए उद्धृत कर रहा हूँ, कि श्राधुनिक युग का कोई भी सन्तोषजनक जीवन-दर्शन किसी एक व्यक्ति के अवदान पर आधारित नहीं हो सकता। वह कई क्षेत्रों को कई प्रतिभाओं के अवदान का और कई विज्ञानों के शोध की उपनिधियों का समन्वय मांगता है। आज के अति-विशेषीकृत युग में यह समन्वय बहुत कठिन भी हो गया है और दूर प्रयास भी बहुत कम हुआ है।.....इसलिए इस विषय में तरह तरह की अतिवादी फैला हुई हैं, जिनमें एक मुख्य अति यह है कि मार्क्स ने हमें एक पुरा जीवन-दर्शन दिया है और वह बहुत बड़ा जीवन-दर्शन है।' मार्क्सवाद ही नहीं, समस्त दार्शनिक मतवादों का कोई समन्वय और सामञ्जस्य राजकमल की कविता में तो है नहीं, श्राधुनिक युग के किसी भी कवि की कविता में नहीं है। किन्तु इसे दिशाहीनता या जीवन की अव्यवस्था नहीं कहा जा सकता।

क्षयन! इतिहास -कवच धरणा वर्तमान शिरस्त्राण
नान निष्पत्त्य हो जाए.....

धरणी मुट्टियों में घासे हुए धरणा व्याकरण

मनुष्यता का यह धनवरण ही निरी मनुष्यता (Naked Humanity) का उद्घाटन है और यही मुक्ति का असली प्रसंग है। यह मुक्ति देह की राजनीति से मुक्त तो करती ही है, उन प्रत्य राजनीतिक दर्ब-वर्चों से भी मुक्त करने के लिए भी संकल्पबद्ध है; जो धर्म, दर्शन, इतिहास, समाज-सेवा और न जाने कितने ही ऐसे क्षेत्रों में व्याप्त है। बहुत सारे कवियों ने ध्रुव तक इसके 'रा' धरणा व्यंग्य-भाव, प्रसतोष, लीक और प्राक्रोश व्यक्त किया था। राजकमल ने ध्रुव इससे मुक्त होने का प्रस्ताव रख दिया है। उनकी मृग्य के पश्चात् धर्मयुग में उनकी एक कविता प्रकाशित हुई थी, जिसमें उन्होंने इस प्रस्ताव का दूसरा पक्ष, जो कि रचनात्मक है, भी रखा है। कविता का शीर्षक है : 'इस शकाल बेला में जम्बूद्वीप के प्रारम्भ से ही ध्रुवकार बन गया है हमारा संस्कार।'

राजकमल की यह कविता विवेक और संस्कारों के द्वन्द्व पर चलकर आई है। राजकमल के मन में विवेक की इस परम्परा के प्रति तीखा विरोध है। मौलिकवाद की प्रभुताई में विवेक ही एकछत्र शासक है और इस एकछत्रत्व का विरोध करना ऐसा अपराध है, जिसका मार्जन शायद हो सके। किन्तु जिसकी यह सहज प्रवृत्ति ही हो, उसके लिए अपराध और दण्ड का माय निरर्थक है। राजकमल एक ऐसा ही विद्रोही कवि था, जिसने आधुनिक युग की समस्त सामन्तवादिता के प्रति यह खल धरणाया। इस रूप में उनका यह प्रस्थान मत्स्य संस्कारों से सम्पन्न है, जो सदैव ही घारा के विपरीत चला करती है। राजकमल भी इस आधुनिक जगत-प्रवाह के प्रतिकूल जाने के लिए संकल्पबद्ध थे।

राजकमल की यह 'प्रतिकूलता' आधुनिकों के लिए चौकाने वाली बात हो सकती है, किन्तु यह प्रस्थान आधुनिकतावादियों से आगे का है। जहाँ विज्ञान, मनोविज्ञान आदि समस्त प्रायोगिक विचारधाराएं पहुँच कर समाप्त हो जाती हैं, वहीं से आत्मा की स्वाधीनता और संस्कार का स्वर उठकर, चलने लगता है। धरणी कविता में इसी विश्वास की मूल्य आधार स्वीकार करते हुए राजकमल ने लिखा है :

समय ने नहीं दिया है मुझको, मेरे इस ब्रह्माण्ड को अब तक आतएव
मेरी कविता को और मेरे व्यक्तिगत रात्रि जीवन को
भोग करती है केवल मछलियाँ, फूलदान में

८६। नया सृष्टि संकल्प : विजयवहादुरसिंह

लहर

देवत पर पत्थर जड़े नीले काँच में, प्रति मुहूर्त
रंग गंध रूप छानि और गाथा

गर्म धारण करती हुई, मेरे सपनों परिवेष्ट में

निरती हुई मछलियाँ

ये मछलियाँ व्यक्तिगत-रात्रि जीवन का भोग भी करती हैं और 'गर्म भी धारण' करती हैं; किन्तु इनके भोग और गर्म धारण करने का 'ध्रुव ध्रुव संस्कारों' की परम्परा को ही आगे बढ़ाना है। राजकमल की मछलियाँ कबीर और प्रभेय की मछलियों से विन्तुन भिन्न हैं। कबीर के लिए वे साधना मार्ग की दुल्हता और जटिलता का प्रतीक निर्वाह करती हैं, तो प्रभेय के काव्य में जीवन के बहुसंख्य सपनों और मास्वरता को संकोचित करती हैं। कबीर बंटे ध्यान मछली की विपरीत प्रकृति पर है और प्रभेय उसके क्लिप्तमित रोमनो स्वरूप पर मुख है। राजकमल की मछलियाँ वासना और भोग की प्रतीक हैं। 'मछली मरी हुई' उपन्यास में राजकमल ने मछली का संबंध काम-वासना और सृजनच्छा से जोड़ा है।

राजकमल मेषिल आह्लाण थे और उनका परिचार गैवागमों के धन्यगत कोल वागचाार तात्रिक मत का विश्वासी था। मछली खाना उनका सामाजिक कर्तव्य था और इस प्रकार मछली उनके रक्त में भी और उनके चारों ओर भी। किन्तु इस भोगवाद से ध्रुव वे ऊब गये हैं। उद्धरण से मत्स्याधिकता के प्रति उनकी अग्रमनस्कता देखी जा सकती है। उन्हें अपने भीतर और बाहर का यह परिवेष्ट अच्छा नहीं लगता। पर समय ने और जमाने ने आदमी को ऐसा होने के लिए विवश कर दिया है। आदमी अब इसके सिवाय रह ही क्या गया है! ये सब ज्ञान-विज्ञान, अन्वेषण-आविष्कार मनुष्य के लिए थे, पर धीरे धीरे ये ही उसके पर्याय हो गये और यहीं उसकी सत्ता संकट प्रस्त हो गई है। यहीं कवि को उस प्रतीकिक अन्धकार का बोध होता है, जिसके निमित्त अश्वत्थामा जैसे लोग हैं। यह अन्धकार अलौकिक इसलिए है कि यह अश्वेष्ट और अविनशेय है। लौकिक-अंधकार तो हमारे बूते का होता है, पर यह मानवीय प्रयासों की सीमा से बाहर। यह अलौकिक इसलिए भी है कि यह जन्म-जन्मान्तरों के लिए शाश्वत हो गया है।

ऐसी स्थिति में दो ही विकल्प संभव हैं : पारलौकिक सत्ता के प्रति निवेदन अथवा आतमशक्ति का पुनर्परीक्षण। राजकमल जैसे कवि पहली स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि वे कल्पना-जीवी नहीं हैं। और दूसरी के लिए धनधोर आत्मविश्वास चाहिए। कहते हैं, विश्वास से ही विश्वास की सृष्टि होती है। राजकमल जब दूसरी ओर मुड़ते हैं, तब उनका विश्वास कांय

दिसम्बर-जनवरी '६८

८७

उठता है। वे तो प्राये वे मछलियों को वण में करने और जान में फंसाते, पर उदास दके मन से लौट आये हैं, रत्नजटित मंदिरा प्राय के लिए :

हे मुग्ध, भव सैकी लो अपना

महाजाल

कंधों पर बेंटी हुई रस्सिया

भपनी वह गज-दन्त

तलवार

रे मुग्ध, भव प्रदान करो

तुझे रत्नजटित श्वेत

। मंदिरा-मात्र

कवि की इस पौराणिक चेतना में आज के युग की विषमता का प्रतीकात्मक साक्षात्कार किया गया है। कितने लोग हैं जो आज की जटिलता और दुर्गमता से घबड़ा कर धीरे की तरह या तो प्रांखें मूँद लेते हैं, नहीं तो चेतना खो देते हैं। आधुनिक सपथ की यह पहली विकल्पात्मक स्थिति है, जहाँ मानवीय दुर्बलता साकार हुई है। किन्तु मनुष्य की यह सीमा प्रात्यक्तिक नहीं होती। वह ठहरने में सचि नहीं लेता। उसकी सार्थकता चलने में है, रुकने में नहीं, और सात हजार वर्षों से वह लगातार चलता रहा है। उसके इस यात्रित्व से ही मानव-सभ्यता विकसित हुई है। परिवार से कुलवा, गाँव, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के अनेकानेक सोपानों की पार करते हुए आज वह फिर 'व्यक्ति-सभ्यता' में लौट आया है, जहाँ पहुँच कर वह उन्मथित कर देने वाली वासनाओं और संतप्त कर देने वाली नृणासताओं का पुल्ला बन गया है। आरम्भ के उच्चतम सोपानों से चलकर शरीर के 'भ्रमभय कोषों' तक पहुँच जाने का यह परिणाम ही उसकी परिभाषा को बदल चुकी है, उसके जीवन का आशय भी इसी परिभाषा का प्रनुगामी है। कुँवरनारायण के शब्दों में :

आमाशय

. गर्माशय

यौनाशय

जिसकी छिन्दगी का यही आशय

यही इतना मोय,

कितना सुखी है वह

आधुनिक व्यक्ति की यह शरीर-निष्ठा उसकी आत्मलीनता और पशुत्व की सूचित करती है। ऐसा मनुष्य ही उन मछलियों के गर्भनिध संस्कार से पैदा हुआ है,

८८ । नया सृष्टि संकल्प : विजयवहादुरसिंह

जो हमारे चारों ओर है, हमारे भीतर है। यह किन्तनी बड़ी विडम्बना है कि मनुष्य मनुष्यत्व लो बँठा है।

इसका आदमोपन चला गया। राजकमल की सारी शरैयानी इसी ममम्या को लेकर है। किन्तु वह कर ही क्या सकता है? वह अपनी इच्छानुसार प्राचरण नहीं कर सकता। इसी श्रय में वह शालानु और दुष्कृत से भिन्न हो जाता है। शालानु ने राज्य की संपूर्ण व्यवस्था और नियमों की ज्येष्ठा कर दी। कन्या से विवाह किया था। दुष्कृत ने शकुन्तला को देखते ही अपने प्रलःकरण की प्रमाण मान लिया था 'प्रमाणमलः करणं प्रवृत्तयः'। किन्तु राजकमल ऐसा नहीं कर सकते। आज शासन का सूत्र उनके भीतर नहीं, बाहर है और यह मध्ययुगीन पौराणिक चेतना की देन है। तुलसीदास के राम भेद भ्रनुचित उचित का विचार मां-बाप के आदेशों से करते हैं, वीवी की उक्तियों से करते हैं। प्रलःकरण की परीक्षक बनाना उनको स्वीकार नहीं, इसलिए वे प्रतिपरीक्षा में विवश कर लेते हैं। बाहर का यह भ्रनुशासन ही सीता और शकुन्तला के लिए पीडादायक है। किन्तु कवि आज का किकर्तव्यविमूढ़ नहीं है। शालानु और दुष्कृत न सही, पर वह कालिदास तो हो सकता है। कालिदास ने ही तो दुष्कृत और शकुन्तला के भलःकरण की गाय का बर्णन किया है। कालिदास ही तो मानव कृतियों की उदात्तता का गायक था। वह विभुवन और मटकी हुई प्रालमाओं का संयोजक था। उसका संपूर्ण काव्य मानव के मुख-संभव और प्रालमाओं की स्वाधीनता का स्वच्छन्द संगम है और यह वही कालिदास था, जिसने मल्लय कन्याओं के उदर से 'नीलांगुरीय' प्राप्त किया था। यहाँ 'नीलांगुरीय' शब्द 'अंगुठी' के लिए आया है, यद्यपि संस्कृत में यह शब्द अंगुलिक होता है।

'अंगुठी' का सन्दर्भ यही विशेष ध्यान देने योग्य है। 'अंगुठी' शकुन्तला और दुष्कृत के बीच स्मृति-रसक तत्त्व के रूप में है। प्रलःकरण से चलकर अंगुठी के सामने विवश हो जाने की स्थिति आज हमारे भी जीवन में आ गई है। हम स्वयं को भूलते जा रहे हैं। अपने स्वरूप का यह लोप और विषटन इस युग की एक प्रमुख मोषणता है, जिसके लिए किसी कालिदास की प्रावश्यकता है। और कवि में वह क्षमता विद्यमान है।

कालिदास के समीप स्वयं को ले जाने से एक ओर कवि का 'मह' सूचित होता है, दूसरी ओर इस युग के कवि-कर्म की कठिनता का भी द्योतन होता है। किन्तु कवि इसके लिए तैयार है। इसीलिए कविता के पाँचवे खण्ड में वह नयी सृष्टि के लिए आकुल है। सुजनेच्छा मनुष्य की ही नहीं, सभी जीवों की एक आदिम वृत्ति है। यह मानव शरीर का संस्कार है। आधुनिक विज्ञान

लहर

दिसावर-जनवरी '६८

८६

ने इसे पमापित तो किया ही है, विषय के गहाव नेत्रकों ने इस तो प्रगति नया यही सब राजकमल की 'देह की राजनीति' या 'देह गाथा' है। यदि ऐसा बचिपत शक्ति का उल्लेख भी अपनी कृतियों में किया है। उदाहरण के कि नहीं है तो फिर उनका नाम 'बढ़ते आन्दोलनों' के साथ जोड़ने का और क्या डी० एच० लारेंस कं, 'सेवी चैलीज लव' जैसी कथाकृति ली जा सकती है। वस्तुतः यह मनुष्य के लिए एक सामान्य धर्म है और उसकी यह प्रकृति की बातें हैं? क्या स्वतंत्र देश में स्वतंत्रता की मांग करना ही 'देह की राज-प्राप भी बदली नहीं है। न केनवादियों ने लिखा है : 'आदमी को चाहिए पाने मरस्य वह आज भी वैसा' किन्तु राजकमल नयी सृष्टि का निर्माण इसी शरीर के लिए संकल्पबद्ध थे और इसलिए उनके मध्ये उल्टा आरोप पड़ा। मुक्ति-से, इसकी लोकव्यापी परम्पराओं और व्यवस्थाओं से नहीं करना चाहते, नहीं तो फिर नयी सृष्टि और वर्तमान सृष्टि में अन्तर कहाँ होगा ! इसीलिए उसके इस संपूर्ण विषय को 'अनर्गत-प्रलाप मन्दिर' कहा है :

इस अनर्गत प्रलाप-मन्दिर में भ्रम कोई दुःखस्वप्न नहीं, मेरे लिए

.....युग का अन्तिम आर्त्तिकाग

स्वीकार करने के पूर्व, हम दोनों अपनी कंच

हम दोनों अपना शिरःप्राण

हम दोनों अपने मुकुट, अपनी रक्तप्रलय पताकाएँ

हम दोनों अपनी त्वचा, अपने मांसपिंड

हम दोनों अपना आकराण

हम दोनों अपने छन्द ताल लय गति

हम दोनों अपनी उंगलियाँ

नीलगिरिय

उतार लेंगे!

अपनी रक्षा, दूसरों का विनाश, अपने को शीर्ष पर प्रतिष्ठित करने के महत्वाकांक्षा, अपनी विजय और दूसरों का विनाश, यह आज के युग के स्वाभाविक प्रवृत्ति हो गई है। यह व्यक्तिवादिता और आत्मसीनता कभी मनुष्य को सहज नहीं होने देगी। उसकी स्वाधीनता तब तक नहीं सम्भव है जब तक इस प्रकार की परम्पराएँ जीवित हैं। स्वतंत्रता की रक्षा भी स्वतंत्र देश में मुश्किल हो गई है और 'मुक्तिप्रसंग' में ही लिखा गया है :

मेरे ही लिए क्यों सेटल होटल से सेटल होटल की दूरी सात समुद्र चौरह नदियों की दूरी बनती है

क्यों इन्डिया गांधी क्यों तुम वह
मैं क्यों कुछ नहीं कुछ नहीं

६०] नया सृष्टि संकल्प : विजयवहादुरासिंह

इसीलिए प्रस्तुत है :
ये शरद के चाँद से उजले बुले से पाँव
मेरी गोद में !
ये लहर पर नाचते ताजे कमल की छाँव
मेरी गोद में,
दो बड़े मासूम बादल, देवताओं से लगाते दाँव
मेरी गोद में !
(दूसरा सप्तक)

अब इस निभृत एकांत में
तुमसे दूर पड़ी हूँ मैं
और इस प्रगाढ़ अन्धकार में
तुम्हारे चन्दन कसाव के बिना मेरी देहलता के
बड़े बड़े गुलाब धीरे धीरे टीस रहे हैं,
और ददं उस लिपि के अर्थ खिन्न रहा है
जो तुमने आस्र मंजरियों के अक्षरों में
मेरी माँग पर लिख दी थी

(कनुभिया : मंजरी परिणय)

ये हैं धर्मवीर भारती और वह थे राजकमल चौधरी ! एक और कवि का विशुद्ध मानस है; उसकी स्त्रीभक्त, आत्मीय, आत्ममकता है। तो दूसरी ओर दैहिक भोग की प्रक्रिया और उसके अभाव में धीरे धीरे टीसना है। क्या मैं इस भोग

लहूँ दिसम्बर-जनवरी '६८

या वासना को दार्शनिक धारण है? मेरी समझ से यह कवि के साथ प्रयोग होगा, क्योंकि वह साफ साफ लिख चुका है : 'त हो यह वासना तो जितनी का दे चुका है, प्राज्ञ उसे वह दूसरे के नाम भोगना चाहता है। वह बहुते मान्य-लनो को नये कवियों के साथ जोड़कर उनके सतहीपन को सिद्ध करने का राजकमल ने वासना या भोग को कभी नकारा नहीं, किन्तु उन्होंने इसे प्रति-मान या मूल्य के रूप में स्वीकार भी नहीं किया। यह इतनी ही महत्वपूर्ण है, जितना कि भोजन और निद्रा, किन्तु यह सब कुछ शरीर का धर्म है और न धर्मों को वहीं तक स्वीकार करना चाहिए और उसका समाधान खोजना चाहिए। राजकमल के द्वारा जो समाधान दिया गया है, वह इस प्रकार है :

.....मन्दिर प्रवेश के पूर्व
तुम औपचारिक समय शीत कपट लज्जा से विमुग्ध, आत्मगुण
शब्द शैल्या पर अनावृत, आग्रहशील कामातुर
सृष्टिमुखी !

प्राभोगी, सृष्टिमुखी, तुम प्रा जाभोगी
तुम्हारा आगमन आवश्यक है इस अथम सृष्टि की रक्षा के लिए
और सृष्टि के लिए
शब्दों की शरण्या आवश्यक है

'अलका' नारी के लिए प्रतीक है। प्रादिम मानवी के लिए प्रयोग करते हुए कवि ने इसका अर्थ-विरुद्ध भी कर दिया है—सूजन चेतना के रूप में। अलका प्रादि पुरुष की संतानी भी है और कवि की संकल्प-शक्ति भी। इसी लिए उसका सम्पूर्ण बाल्याप बहुत व्यक्तित्व है। शब्दों की शैल्या पर आवाहन करते वाला कवि जिस अनौपचारिक समयशील परिवेश का उल्लेख कर रहा है, वह नयी सृष्टि के लिए एक शर्त है। जिस प्रकार भोग ने बालों की शैल्या पर अनावृत और निष्पक्ष होकर न केवल अपना मूल्यमान किया था, अपितु सम्पूर्ण युग की विगलित स्थिति की समीक्षा की थी, उसी प्रकार प्राज्ञ साहित्य और कला की चेतना का संस्कार करता होगा। वादेवी के मन्दिर में, शब्द शैल्या पर कवि क्रीड़ा के लिए भी उन्होंने शब्दों की आवश्यकता है, जो अलका को नयी भाषा, नया गति और नयी कल्पना दे सके। वह जो सृष्टिमुखी है, शब्दों की शैल्या पर अनावृत हो जाए और अनौपचारिक आग्रहशील कामातुरता के बीच ही इस अथम सृष्टि का विनाश हो सकता है और नयी सृष्टि का निर्माण भी।

६२। नया सृष्टि संकल्प : विजयवहादुरसिंह

लहरा

जन्मों की यह जा-जगता इसलिए आवाश्यक है कि वे एक ओर तो दुर्निम सदैवता और जीवन की बोधी परम्पराओं को भेद सकें, दूसरी ओर उस अलका को भी भुक्त और प्रानावित सुखनेच्छा से सम्पन्न कर सकें, जो सृष्टि-विधायिनी क्षमताओं से सम्पन्न है। जन्मों की शय्या पर बैठने वाली यह अलका समस्त प्रचलित व्यवस्थाओं और नियमों से ऊपर होगी और इस प्रकार अथल सहज मानव-मयता से सम्पन्न भी। मानवीय अस्मृतियों और देवी उदात्ताओं का ऐसा सम्मिलन किसी अन्य पौराणिक पुरुष में नहीं है। अन्धे और बुरे का यह संगम ही तो सृष्टि की सही परिभाषा है। किन्तु शिव का रौद्र और प्रलयकारी स्वरूप विरलता से ही देखा जा सकता है। औपद्रव्य के बदले शिष्ट मर्यादाओं की स्थितियाँ उसके साथ अधिक हैं। किन्तु वह विशिष्ट भी है और सामान्य भी। लघु भी है और महान् भी। वह प्रादि पुरुष है और अन्तिम पुरुष के रूप में भी उसी की सत्ता स्वीकारी गई है। इसीलिए अथम सृष्टि के विनाश और नयी सृष्टि के निर्माण के लिए कवि ने 'शिव' की सही कल्पना की है।

इसके पहले उसने अपने को कालिदास कहा था और अब स्वयं को 'शिव' के रूप में प्रतिष्ठित कर रहा है। पहली कल्पना का चेत साहित्य है तो दूसरी कल्पना का खोल पुराण। एक कवि है, दूसरा देवता। अपने यहाँ कवि की तुलना स्वयं से की गई है : 'कविःमनीषी परिभू स्वयम्भू !' कवि 'प्रजापति' होता है : अगरे काव्य संसार कविरकः प्रजापतिः। कवि की इतनी महता भारतीय चिन्तन की उदारता और भारतीय समाज की कलात्मक सृष्टि को सूचित करती है। अब राजकमल चाहे कालिदास हों या 'शिव', कोई फर्क नहीं पड़ता। शिव अपने युग के अकेले विषयाधी थे और कवि भी अपने युग की समस्त अनुभूतियों का भोक्ता होता है। आधुनिक जीवन की विसंगतियों में 'शिव' के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। राजकमल लिखते हैं :

सैने अपना यह दशाविहीन शिवत्व क्यों प्राप्त किया है ?
क्यों सैने ही पिपा है
विषकुम्भ ?

यह 'विषकुम्भ' आधुनिक जीवन की विषाक्तता और तिकता का है। एक समझदार व्यक्ति के लिए सबसे बड़ा विष पीना यही है कि वह जानते हुए भी इसे दौधे जा रहा है। जो जीवन जीने योग्य नहीं रह गया है, वही उसे जीना पड़ रहा है। यहीं विष पीने का सवाल और भी कटकर हो उठता है। इस प्रकार की स्थिति में कितने लोग तो ऐसे हैं, जिनके सामान्य युग-द्वेष भी मर गया है। कीर्त चौधरी की कविता है :

दिसम्बर-जनवरी '६८

‘यह कैसा बक्त है

कि किसी को कड़ी बात कहने

तो भी यह बुरा नहीं मानना

जैसे पुष्पा और प्यार के जो निगम हैं

उन्हें कोई नहीं जानता

यही भाव की प्रामाण्य मनुष्यता है, जिसे न केवल राजकमल चौधरी बल्कि उनके प्रनेक समानधर्मी कवि जानते हैं। कुमारन्द पारसनाथसिंह की पंक्तियाँ दृश्य हैं :

‘ये लोग भी क्या खूब हैं ! भादमी का अर्थ धो डालने पर तुले हैं। जानवर हैं। जिन्दगी को प्रादिम अहेर और दुनिया को जंगल किये चलते हैं।’

‘विषकुम्भ’ पीने का एक दूसरा अर्थ कवि के अहं से जुड़ा हुआ है। लगता है जैसे पूरे जमाने का दुःख उसने ही उठाया है। हिन्दी में यह प्रवृत्ति मध्यकालीन कवियों से ही देखी जा सकती है, जहाँ वे ‘मो सम कौन कुटिल खेल कामी’ और ‘हो तो सब परितन को टोको’ जैसी पंक्तियाँ लिख गये हैं, किन्तु वे मकल कवि थे और अपनी दारुण भावना के कारण मनुष्यों की निष्ठुरतम स्थिति से अपनी तुलना करते थे, जबकि आधुनिक कवि ऐसा करके किसी प्रकार भी अपने को हीन प्रमाणित नहीं करना चाहता। अतः यह स्वीकार करते में कोई आपत्ति नहीं कि अपनी तुलना ‘विषपायी शंकर’ से करना कवि के अहं के कारण है। किन्तु एक व्यक्ति रूप में राजकमल विविध अनुभवों के कवि रहे हैं। एक ओर ब्राह्मण परिवार, मैथिल लोक-जीवन और तन्त्र साधना है, तो दूसरी ओर उनका सम्पादक और लेखक का श्रमार्थाव वाला जीवन रहा है। दोनों के कड़े मोठे अनुभव उनकी मिले हैं और अर्थकर अस्वास्थ्य के दिनों में उन्होंने दुःख पा और भी बड़ श्रुभाव किया तथा उस जीवन का भी स्मरण किया, जो ‘पंडित मानवता’ का पर्याय है। इसी के उद्धार के लिए वे ‘शिव’ बने। यही उनके व्यक्तित्व की वीर्यकला थी। यह राजकमल के जीवन की शक्तिमत्ता श्रमार्थक अर्थका थी, जिसने उन्हें सचेत किया है और प्रबुद्ध भी कि मैं और हम में कोई तत्त्वगत अन्तर नहीं है, पर दोनों दो भिन्न स्थितियों का निर्देश करते हैं। ‘मैं’ राजकमल की काव्य-चेतना, कालिदास और शिव समाये हुए हैं; तथा ‘हम’ में राजकमल तथा यह सम्पूर्ण जीवन ! इन दोनों को निकट लाने का प्रयत्न उन्होंने हमेशा किया है। उनकी कविता में इसीलिए वे स्वयं प्रतीक हैं, उस व्यापक और विशाल जीवन के, जो न केवल उनके आस-पास का है, बल्कि सामूहिक और सार्वभौमिक है। इस पीठ पर राजकमल का

६४ । नया मुष्टि संकलन : विजयवहादुरसिंह

लहर

पुष्प, योग या कष्ट उनका निजी नहीं रह जाता।

सम्पूर्ण कविता में ‘मैं’ का यह स्वर ही मध्य परिवेश को अपने में लीन करता हुआ दिखाई देता है। विनिष्ठता में सामान्यता का यह लोप करने ही उल्टी पद्धति हो, किन्तु यही युग की प्रकृति है। कबीर ने जब उलटबौलियों लिखी थी, तो केवल चमत्कार के लिए नहीं। उनका मार्थक प्रयोजन था और वह यही कि जगत की रीति से विपरीत चल कर ही उनकी बात समझी जा सकती है, क्योंकि वह बात ही जगत की ‘रीति’ के विपरीत है। राजकमल की यह पद्धति भी बहुत कुछ उसी प्रकार की है। आधुनिक विजय के इस रीतिवाद के विरोध में ही तो राजकमल खड़े हैं। इसीलिए न तो उनमें प्रतीत के प्रति आकर्षण है और न वर्तमान के प्रति मोहभाव। मंत्रिध की बात का तो प्रयत्न ही नहीं उठता। वर्तमान, जो कुछ जैसा है, उसी को नया संस्कार देना है और यह तभी सम्भव है, जब कि सम्पूर्ण उपस्थित वास्तविकता का निषेध किया जाय। मुरेन्द्र चौधरी इसे ही जीवन का नकार मानते हैं। किन्तु यह जीवन का नकार नहीं, जीवन की कठिण स्थितियों का नकार है। आधुनिक समय में जने का ढंग और जीने की गुणव्यापी परिभाषा की अस्वीकृति है। दार्शनिकता तो यह है कि राजकमल का व्यक्तित्व सर्वग्राही था। वहाँ कहीं नकार ! यदि नकार ही होता, तब विषयगत की स्थिति ही कहाँ आती ? किन्तु वे जीवन को उचित परिभाषा और सम देना चाहते थे। और इसकी पहली प्रक्रिया सम्पूर्ण परिवेश को कुछाभुक्त करने से सम्बन्धित है। ‘तहर’ के भई-वून संयुक्तोंक में उन्होंने लिखा है : ‘कोई झूठा आशावाद, कोई नलत लवादा, मर्सीहारी का कोई दावा मुझको नहीं है। लेकिन मैं भादमी को सम्भवा (whole) और पूरा (perfect) देखना चाहता हूँ। यही मेरा जीवन-दर्शन है। मैं जो कुछ करता हूँ, अपनी किलावों में, अपने नये में, अपनी स्थितियों में और अपने विचारों में जो कुछ भी मैं करता हूँ, उसका कारण कुछा नहीं है। उनका एकमात्र कारण मेरी मुक्ति प्रायणा है। यही राजकमल की सामाजिक चेतना है, जिसमें समाज—जो विद्यमान है—का निषेध तो है, किन्तु सामाजिकता का निषेध नहीं है।

जिस समाज का निषेध राजकमल करते रहे, वह यही विद्यमान है :

जब हम लोग बीजगणित की भूल चारणाओं को अपने स्वामी ज्वारोक्तान्त जर्जर शरीर की चिकित्सा में उपयोगी और उपलब्ध बना रहे हैं

अभी हम लोग फूलदान में भरस्य कन्याएं

मदिरा निर्माल्य अर्ध-विस्तार नियति शब-साधना

दिसम्बर-जनवरी ‘६८

६५

और ईश्वरों की मूर्ति

चाहते हैं प्राप्त करना वह अभिवादनहीन
भारतपरिभाषा—विभा में, प्रपराय में, व्यापि में
कविता में प्रेम-वर्तित प्रेम-ध्वज प्रेम-मुक्ति
प्रियातिमा—समाधि में

प्रभी हम लोग मूर्ति-पूजक, जातियों के आदिम संस्कार
(समय ने ही दिया है)

मेरे इस श्लोक को यह शैलीक प्रयत्नकार)

प्रस्तीकृत नहीं किमाध्वयंतः परं

कर पाये हैं,

क्योंकि हमारे अस्तित्व के नेपथ्य में, प्रपराय में निगुणपूर्वक स्थापित है

कोई एक दूसरा सत्य

कोई एक दूसरी नदी, दूसरी स्थिति दूसरा जल-स्वन

कोई एक दूसरी विडम्बना

कोई एक दूसरी मृग, कोई एक दूसरा ईश्वर

जिसे हम लोग प्रबल तक

अपनी कविता अपनी स्त्री अपनी प्रकृति

और कभी कभी अपनी मूर्ति कहते पाये हैं । !.....'

कवि का यह निरीक्षण और निष्कर्ष उसकी जातीय-चेतना और अनुभव-
सूक्ष्मता के प्रमाण हैं । हमारा सम्पूर्ण परिवेश या तो दिखावटी है या झूठा ।
हम जो जी रहे हैं, वह जीना नहीं है । जिसे हम आत्म-गिर्या समझते हैं,
वह वस्तुतः कुछ और है । कविता और कला के नाम पर जो कुछ भी हो
रहा है, वह सब या तो फरेब है या हमारी जड़ता । इन्हीं दोनों के बीच वह
समाज है, जिसको राजकमल की कविता नकारती है । राजकमल का
नकार उन बेमानी मूल्यों के प्रति है, जो वस्तुतः मूल्य हैं ही नहीं । द्विधा,
नियतिवादित, भाग्यवाद, शक्यता और फलानाम, आत्महंताओं की भीड़
और सत्य के प्रतिष्ठों का ही यहाँ जन्मपट है । हम उन परम्परागत सत्तों (?)
से घिर गये हैं, जो भयंकर मिथ्यात्व के प्रतिनिधि हैं और हम इन्हीं की पूजा
करते चले आ रहे हैं । मूर्तिपूजक जातियों का यही आदिम संस्कार है ।
पत्थर के देवता को पूज-पूज कर हम भी पत्थर हो गये । और अब कहीं
कोई संवेदना नहीं रही । सर्वेश्वर की एक कविता है : रात भर :

‘रात भर’

हवा चलती रही,

६६ । नया सुवि संकल्प : विजयबहादुरसिंह

मन भिरा

मूर्ति के कङ्काल पर

कैसे हुए विश्वकी के पल्ले-सा

खुलता बन्द होता रहा—

झड़ और दीवार के बीच

सर पटकना रोता रहा ।

झूँटी पर लटका

एक चित्र हिलता रहा

सेज पर कोई

चादर तान सोता रहा ।

एक ओर ‘सर पटकना और रोना’ है तथा दूसरी ओर ‘सेज पर चादर तान कर सोना’ । कितना बड़ा विषय (Concubine) है यह ! इसी विषय में कवि यह अनुभव करने को विवश होता है :

‘कहाँ हूँ मैं आह !

कोन सा है यह तरंगित विपुल भाषा लोक ?

चारों ओर मेरे, घिरा चारों ओर, चारों ओर, चारों ओर.....

विजयदेवनारायण साहि

यह ‘भाषा लोक’ वही है, जहाँ मनुष्य का व्यक्तिगत कृत्रिम संस्कारों से अनुशासित होने को विवश है, चाहे वे सत्य धर्म के हों, या राजनीति के । इतना बड़ा चमत्कार कि जो वास्तविकता है, वही आभास बन गया है, और जो आभास है, वह वास्तविक हो गया है । गलत परिभाषाओं और भ्रष्ट प्रतिमानों के ही कारण अज्ञेय जैसे चित्रक कवि को भी कहना पड़ा है :

असन्निधय मे सभी सम्पत्ता के लक्षण है

और सम्पत्ता

बहुत बड़ी सुविधा है

सम्प, तुम्हारे लिए ।

(नयी कविता) .

समय लोगों (सिविलियन) के लिए सम्पत्ता एक सुविधा है, जैसे ही, जैसे नेताओं के लिए राजनीति एक सुविधा बनती जा रही है । जहाँ सिद्धान्तों की भाड़ में सिद्धान्तहीनता और स्वतन्त्रता के नाम पर पराधीनता की स्थिति है, वहाँ सम्पत्ता की स्थिति मानी जाय तो कैसे ?

यहीं यह प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो उठता है कि इसके मूल में कौन से तथ्य हैं ? ‘सुक्तिप्रसंग’ में राजकमल ने उन तीन प्रमु-जातियों का उल्लेख

दिसम्बर जनवरी ६८

लहर

६७

किया है जो इस सफल समय (गाम) के प्राधुनिक मीन है
वैज्ञानिक राजनेता और स्त्री अंगों के व्यापारी

कुल तीन ही प्रभु-जातियाँ रह गयी हैं अब स्वयंपू-भस्तु'

विज्ञान ने धादमी को छोटा कर दिया । '.....' धादमी का गौरव बूझ-बूझ
हो गया । मनुष्य पशु से भिन्न किसी उत्तम योनि का जीव है, यह कल्पना दूक
हक हो गयी । धादमी बुढ़क कर जानवरों के बीच जा मिला और वहाँ भी
यह चिन्ता उसे सताने लगी कि वह निएंय लेने में भी स्वतन्त्र नहीं है ।
दिनकराजी का यह वक्तव्य विज्ञान की ज्यादातियों को सन्नित करने में पूर्णतः
सक्षम है । उन्होंने श्रामे यह भी लिखा है : 'वर्तमान संस्कृति इस पीड़ा से वेहाल
है । जो कम जानते थे, उन्होंने यह कह कर सन्तोष कर लिया था कि संसार
लोला है । जो अधिक जान गये हैं, वे कहते हैं, संसार रहस्य है ।' दर्शन और
विज्ञान के इस ताल-मेल को जिस रूप में भी बढ़ाया जाय, किन्तु वैज्ञानिकता
ने मनुष्य को यन्त्रगत कर दिया है । आत्मा की सत्ता वहाँ स्वीकार्य नहीं है
वैसी स्थिति में आत्मा की स्वाधीनता का कोई प्रश्न तो उठता ही नहीं
और राजकमल चौधरी इस स्वाधीन चेतना के न केवल पुरजोर समर्थक हैं
बल्कि उसके अग्रणी उद्घोषक भी हैं । उन्होंने लिखा है : 'मैं इतना स्वतन्त्र
स्वाधीन हूँ कि शरीर की दशाएँ और महादशाएँ मुझे अतर्कित नहीं कर पाती ।
'मुझे कुछाग्रस्त नहीं कर पाती

हूँ क्योंकि

मैं अपने शरीर का स्वाधीन हूँ

शरीर मेरा देवता नहीं है

मेरा दास है !!'

जब कि वैज्ञानिक दृष्टि से, मैं अपने शरीर और अपने शरीर में आवश्यक
के अनुसार पैदा होनेवाली इच्छाओं के प्रतिस्ति और कुछ नहीं हूँ । आत्मा
नहीं, ईश्वर भी नहीं, केवल यह शरीर.....'

असली प्रश्न यहाँ बुद्धि की परम्परा, विज्ञानवाद और यांत्रिकता का तो
आत्मा की स्वाधीनता और भावनामयता का है । राजकमल ने दूसरी स्थि
को स्वीकार किया है । मैं कह सकता हूँ, राजकमल इस प्रचलित और नारेवा
आधुनिकता का निषेध कर रहे थे । इस यांत्रिक और मानव-विरोधी दृष्टि
प्रति उनके मन में तीव्र आक्रोश था । अकेले राजकमल ही नहीं, इस युग
अनेक कवि प्रतिभाओं ने इस आधुनिकता के प्रति अपनी अन्यायमनस्कता व्य
की है । जलम श्रीरामसिंह की यह प्रतिक्रिया यहाँ उल्लेखनीय है :

कुछ नहीं है.....

कहत कहीं में, किस प्रकार

ना, उसमें परिध्याप्त मात्रा-
सम्भव नहीं है । नटस्थ
पित है । और जिस व्यक्ति
चना का कोई व्यापक अर्थ
हो न हो, विशिष्ट व्यक्ति,
ई विशिष्ट अर्थ हो—और
। उसकी जीवन समर्पित
एव-एक की समीक्षा बाल-
नुमान के आधार पर नहीं

प्रति दया, क्रोध, स्नेह या
। अतः तटस्थ समीक्षा-दृष्टि
इकर व्यक्तिपरक काव्य की

'—' की कुछ विशेष पंक्ति-
। ऐसा नहीं है, जिसे चकव्यूह
बोधगम्य तथा प्रभावोत्पादक
स्पष्टीकरण के बावजूद प्रयुक्त
र-मण्डल एवं शारद-सम्बद्ध
अमर में नहीं आता । प्रसंगतः

य गणना करने

करने के लिए

ए

धर्मी धिरे या लो' का एकलकीय,
बलवान शही धिरे था।

गोविं कपासला.....' गांधि गांधि जिनगी हल गात
का अन्ध देहा करते है कि भयर 'जिलौरकम' और काला-बेनता के बीच
को स्थिति मे कथिता (या धा-कथिता) स्थिति आय, तो गयी होना कि बहुत-
से अथवागो तथा धन्देवेतना के बीच घसली वयसय दृष्ट-धिरर जाएगा
कि प्रत्यक्षता सीधतीत हो आएगी। —कि पाठक, सत्यकथा वास्तवता को
कभी उर्बेक्षो, कभी मूढ़ हल्लाह, कभी गाव कालम-भेदना और कभी 'काल-
तिक नशावाचक नाय' समझे।

और, हमे इन तथ्यों को तो स्मरण रखना ही होगा कि उपशुभ, पुनरागति,
धनतलशयु, विरुधोदशी गांधि ने कब क्या किया था ? प्रजापति के गण में सती
क्यों स्वेच्छा से नरम हुई थी ? ब्रह्म-मुण्डलिनी, मुष्टि सहस्रवार द्रव्यादि क्या
क्या है ? क्यों है ? योनि-कामाख्या, वेद्योंको प्रादिशरण तथा पतित-जब-
सायक किन स्थितियों-परिस्थितियों से उत्पन्न है ?

'रहस्यवती योनि-कामाख्या सती-नृत मान ब्रह्म-मुण्डलिनी से हमलों का
इति-जब सायको का भवतार होता है

हृदय

सर्वप्रथम और सर्वात्मिक

इन्द्रातिग

हजारें अस्तित्व का कारण और हमारे जीवन की धारणा

जन्मा एक अन्ध प्रसंग में :

'उपशुभ कुमारीगिरि श्रवतशयु के आगमन उपरांत

उत्तर कर लवना-कवच प्रस्थि प्रायुष

काननर निमोर्क-मूल्य में फलवती हैं नायिकाएँ.....'

.....गांधि ब्रह्म न केवल दुष्ट हैं, वरन् किसी असामान्य श्रवस्था को समर्पित,
श्रानावरक व श्रान्ध प्रतीक कथनों से सजित होने के कारण व्याख्यायित
सन्धियों की समझ में किसी भी प्रकार सहोपक नहीं प्रतीत होती।

'मुक्तिप्रसंग' की श्रानोचना करते हुए चन्द्रमौलि उपाध्याय ने कभी राजकमल
चौधरी के विषय में लिखा था : 'लगत है, मानवीय भ्रंतरण की बहुत ऊँचाई
तक उठना हुआ राजकमल वरातल नहीं छोड़ेगा, यथार्थ से विपुल नहीं
होगा' और साथ ही : 'कालमक पक्ष में विधियों का रोल की तरह मुक्तिल
होकर दीवता उनको प्रविन है ?'

१०२। श्रुत श्रु गार में नमिडन नायिकाएँ : प्रत्यकनन्दा दासगुप्ता

सहृद

गण नीति में भी गहरी प्रभारता 'बा, श्रु गार' के नीचे है, कानन
कोनम कि गरी कोनता किसी निर्दिष्ट नई गण, सत्यता या धर्मगुण के नीचे
जिनकी गयी। नर्तमान कथन 'नर्तकी' मानता गरी कथनय प्रकर कानन
गली के बानधन (अतिन से ही जगत अर्थविज्ञान और प्रकर ईश्वरविज्ञान का
गल वर्तमान, 'काल नीति' से उत्पन्न सार आया हुआ वह गहरी वर्त
मान) बार बार सीन प्रवर्तन में नील मान की किया कुछ शरीर है, कि
गायने हरन्ता गुण-कानन होने गार 'दूरदर्शन' ही जाना ही प्रकाश किर्तन
ही। और इसीलिए, अतिन में नील जाना या फिर अधिकृत से अधिकता कि

गरी किसी प्रकार का गुण अन्तर न आयी।
जब कि नेता होना नहीं चाहिये, या। वर्तमान के नीचे अथवा और दिव्यजन
रजने काली के लिए अतिन का पाठ गलत मान है। और 'अनि कीर्तना गल
मेरी वातगाएँ मेरे लिए अथवा प्रथम और अतिनय वर्तमान है। गुण उन्नी
से किसी एक में प्रामाण्य हो सकती हो, इन दोनों के बीच उन्नी अथवा और
हम दोनों के अविषय में प्रामाण्य नहीं कर सकती.....' ईश्वरी बान धरुना की
गलत है। वस्तुतः अविषय का प्रामाण्य करना वर्तमान ही अविषय का
प्रस्वीकार है। जबकि प्रथम में रा परिकर किसी न किसी अतिन या वर्तमान
का ही अविषय है, जो अविषय-नृत्य वर्तमान को व्योका करना के उन्नी
कोनता सही तर्क उपस्थित किया जा सकता है ? हमें लक्ष्य करने का अर्थकार
कहें कि साहस, नर्तन नहीं कि हमनेलों का वर्तमान अतिनिक नही, किन्तु
अविषय हो सकता है।

दूसरी विशेषता अर्थान् कलापक्ष की दुष्टता का प्रथम ही 'श्रुत श्रु गार'
का पहला प्रथम है। अर्थान् शायद इसी को 'हृद-कानि' या कि 'सुखक कानन'
गाया' की संज्ञा दी जानी चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं कह पाते का मुझे दुःख
है। दुःख इस बात का भी है कि कवि की अनुपस्थिति में 'अनुप' की कोनता
'अनुपस्थिति' शब्द मुझे अधिक सख आर सहा है। कानन का नर्तन
करने के प्रतिरिक्त और कुछ करने को रह नहीं क्या है, मेरे लिए। कानन-
समर्पण के लिए कवि को धन्यवाद भी मैं नहीं दे पाई, क्योंकि 'मुमुक्षा' (नर्द-
६७) में प्रकाशित 'प्रत्यकनन्दा दासगुप्त के लिए' राजकमल चौधरी की रचनता
'श्रुत श्रु गार' में सजित नायिकाएँ' मुझे यभी नन्दावर '६७' में ही देखने का
सौभाग्य प्राप्त हुआ है। • •

दिसम्बर-जनवरी '६८

१०३

राजकमल चौधरी : कहानी का चेहरा

सुरेन्द्र चौधरी

राजकमल के प्रनुयायियों और विरोधियों की स्थिति इस श्रव्य में लगभग एक-सी है कि यदि विरोधियों ने उसका खंडन समुचित रीति से नहीं किया, तो अनुयायियों ने भी उसकी स्थापना प्रयोजित गहराई में जा कर नहीं की है। किसी लेखक के लिए इससे शर्तविरोधी और दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति दूसरी नहीं हो सकती। राजकमल पर अब तक जो कुछ भी लिखा गया है, वह गलत आग्रहों का परिणाम न होता और उसके व्यक्तित्व को बार-बार रचनाओं से जोड़ कर देखने की चेष्टा न की गई होती, तो इस लेख के लिखने में मेरी कोई तात्कालिक दिलचस्पी न होती। मैं नहीं मानता कि राजकमल ने अपनी रचनाओं में अपनी सम्भावना को पूरा कर लिया था, या कि गलत कर लिया था। यदि उसकी रचनाओं के श्रांतिक तनाव का कारण भी है और श्रांत-रिक सार्थकता भी। बहुत कम श्रव्य में उसने बहुत ज्यादा लिखा। उसका कथानुसंहित इस बहुत कुछ लिखने के शर्तविरोधी का शिकार है—स्तर और श्रांतिक रचनावट में उसकी कहानियाँ इतनी श्रव्य हैं कि ऐसे निष्कर्ष निकालना सहज हो जाता है। कवितार्थ उसने कम लिखी और श्रव्य लिखी। उपन्यासों में वह अपने श्रव्यरूपन का सही-सही आभास देता है।

राजकमल की कहानियाँ रियोजर्नल जैसी लगती हैं, क्योंकि उनका एक अपना श्रव्य-श्रव्य 'लोकल' जैसा बन जाता है। उच्च-मध्यवर्ग, मध्यवर्ग और निम्न-मध्यवर्ग—यानी मध्यवर्ग के पूरे ढाँचे के विस्तार की अपनी कहानियों में समेटने के साथ-साथ उसने विरूप सर्वहारा जीवन पर भी कहानियाँ लिखी हैं। हाँ, जहाँ-जहाँ वह अपनी 'श्रव्य वलड' सेवेना का आभास जरूरत से

जगता देने लगता है, वहाँ उसकी कहानियाँ फेरेनी बन जाया करती हैं। ऐसी कहानियों को बड़ी मात्रावती से श्रव्यनी की जरूरत है। और राजकमल के मध्य में ये यही काम मध्यम कम हुआ है। नयी कहानी की कृतित तस्वीर को राजकमल इन्ही कहानियों में तोड़ता है। क्या यही कारण नहीं है कि नयी कहानी के इम्पेक्टर नेना उसे श्रव्य से खारिज करना चाहते हैं? राजकमल नयी कहानी का सही प्रतिपक्षी (एन्टिगॉनल) है। एक साहसी ईमानदार प्रतिपक्षी को राजेन्द्र यादव एक गति में खारिज करना चाहते हैं, कमसेकम उसे गुमशुदा बना कर भारना चाहते हैं।

राजकमल अपनी कहानियों में काले पथर की बुरदुनी बदगुल्लू मूर्तियाँ गढ़ता रहा—मगर इन्हें उसने खंडहरों से नहीं निकाला था, ममकावीन जीवन से निकाला था और उसकी मंशा कतई उन्हें संग्रहालय की चीज बनाने की नहीं थी। वह इनकी खिन्दागयाँ वापस देना चाहता था। उसकी यही रचनात्मक सतक की हद तक। बड़ी लफाई से वह अपने रचना-कर्म के सम्भव में कहता है: 'परिस्थितियों की घन-कोणरमक श्राद्धतियों और समय-बंडों को (बहु) व्यक्ति-संग्रहों में बदल देता है—बदल देने की दानवीय चेष्टा करना है।' राजकमल की कहानियाँ श्रव्यतया दुःस्वप्नों की कहानियाँ हैं। इन श्रव्यतया दुःस्वप्नों की कहानियाँ वह क्यों लिखता है? वह कौन-सी जमीन है, जिस पर ने श्रव्यतया दुःस्वप्न उसे खिन्दागी की हलन्तों से जोड़ देते हैं? जीवन के इस श्रव्यतया श्रव्यतया को रचना-कर्म के द्वारा वह सम्भव को बहुत चेष्टा करता रहा—अपनी कहानियों में सबसे ज्यादा। उसने अपने रचना-कर्म के सम्भव में एक और महत्वपूर्ण बात कही है: 'लेकिन कहानियों में उसने होनेवाले अपने को व्यक्तिओं और उनकी स्थितियों से घिरा पाया है।'

मैं व्यक्ति और उनकी वास्तविक परिस्थितियों से घिरे होने की विवशता को स्वीकार करता हूँ, तब मानना चाहिए कि उसमें नैतिक साहस और स्वीकृति का श्रव्य नहीं है। फेरेनी, रियोजर्नल और दूसरे कई माध्यमों की मिली-जुली कथानुसंहितों में लिखते रहने के कारण राजकमल अपनी कहानियों में उनभन पेश कर देता है। मगर उलभन रचना को बेमाननी नहीं करनी, श्रातोचना पर श्रावेप करती है। 'खामोश घाटियों के साँव', 'वेणी-संहार' और 'समुद्रिक' जैसी कहानियाँ इसी उलभन के बीच एक व्यापक जीवन-सत्य का बोध कराती हैं। जैसा मुझे लगता है, राजकमल के साथ उसकी कहानियों में भी लोगों ने सेस का श्रातक और मिय जोड़ दिया है। राजकमल सेस नहीं लिखता,

पानी पलांग से शेषस नही मिलता। जीवन की संवेदना में—प्रवाह या उठराव के बीच—सेसस कही होता है। होता है तो रहे, राजकमल अपनी कहानियों से इस होने को बलाए खजा नहीं करेगा। इतना शाकाहारी कह नहीं है। मगर जिन लोगों ने उसकी कहानियों के साथ सेसस का प्रातंक जोड़ा है, वे उसकी कहानियों पर भी नजर दें। 'पिरामिड', 'चलचित्र चंचरी', 'मदालसा सुन्दरम्', पत्थरों के नीचे दबा हुआ हाथ', 'गंगा मिलानी', 'वेणी-संहार' और न जाने कितनी दूसरी कहानियाँ हैं, जो इस मिथ के टुकड़े कर देती हैं। यहाँ 'पिरामिड' से एक उदाहरण लें। 'पिरामिड' के पारिवारिक वातावरण में एक प्रातंक है। मगर यह प्रातंक सेसस का नहीं है। रसिकलाल उस काली कम उम्र लड़की और अपनी पत्नी के बीच कई स्थिते बनाता है। कम से कम उस काली लड़की से तो उसका रिश्ता शुद्ध व्यावसायिक है। कुम्भी में सेसस नहीं है, व्यवसाय है। लगभग वैसे ही प्रचुर व्यवसाय मुनिया के हाव-भाव में है। रसिकलाल के हाथ का दबाव महसूस करती हुई कुम्भी उत्तेजित नहीं होती। उसी तरह रसिकलाल की चिकोटी से मुनिया उत्तेजित नहीं होती। कुम्भी सादगी से कहती है : 'मुझे जल्दी फुरसत दे दीजिये।' एक व्यावसायिक रटा-रटापा जुमला—न बड़ा और न छोटा। कुम्भी शरीर का व्यवसाय नहीं करती। हाँ, उसके व्यवसाय में शरीर विक सकता है। ये श्रालग-श्रालग बातें हैं और कुम्भी इन्हें श्रालग-श्रालग ही रहने देना पसन्द करती है। हम अपने अपने पिरामिडों के भीतर केंद्र हैं, सभी की तरह, रसिकलाल की तरह, कुम्भी, मुनिया और जयमाला की तरह। हम अपने पिरामिडों को तोड़कर ताश के बक्की पत्तों में मिला देना चाहते हैं। यह नहीं मिला पा सकने का प्रातंक हम सब पर है। इस प्रातंक की एक जीवन-व्यापी स्थिति है, इसे सेसस से जोड़ना है।

है, ताश के पिरामिड बना-बनाई संकटा है, मगर वास्तविकता के भीतर रहने पिरामिडों में उसका जादू गुम भी हो जाता है। जयमाला पत्थर या काली सख्त लकड़ी की तरह ताश के पिरामिडों के भीतर से उभर आती है—आदमकद यंत्रणा बन कर, पूरी वास्तविक, ठोस। जीवन की छोटी-छोटी सच्चाइयों से घिरे मध्यवर्ग का जीवन, उसमें साराब की तरह निकाले गये तंग रास्ते, उत्तेजना की गलियाँ और ठोस वास्तविकता से घिरी परिस्थितियाँ—राजकमल की कहानियाँ सेसस से ज्यादा मध्यवर्ग के जीवन के इन पहलुओं से बनती हैं।

'खामोश घाटियों' के साँप और 'सामुद्रिक' जैसी कहानियों को यदि श्रमवाद मान लिया जाय, तो राजकमल की शेष कहानियाँ 'नयी कहानी' की पूरी बना-

१०६। कहानी का चेहरा : सुरेन्द्र चौधरी

लहर

वट से प्रलग है। क्या कारण है कि नयी कहानी के भाव-बोध, पैटर्न, मागा और स्थापत्य के भीतर राजकमल की कहानियाँ नहीं अट सकती? डॉ० नामवर सिंह से लेकर कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव तक की यन्त्र-तन्त्र-सर्वत्र निखी-टिप्पणियों में कहीं राजकमल का जिक्र नहीं आया? रमेश बशी, इबनायसिद, शानी और कुछ दूसरे लेखक क्या इस दृष्टि से नयी कहानी से ज्यादा करीब नहीं हैं? स्पष्ट है कि राजकमल की कहानियाँ 'नयी कहानी' की सीमा में अट नहीं पाती, ठीक उसी तरह, जिस तरह, प्रमरकत, मार्कंडेय और मन्नु मंडारी की बहुलसी कहानियाँ एक दूसरे श्रवण में 'नयी कहानी' के पैटर्न में खप नहीं पाती! कमलेश्वर के ऐसे श्रानाड जुमले के बावजूद—कि नई कहानी ने केन्द्रीय व्यक्तियों (?) की तलाश की—नयी कहानी उन व्यक्तित्व-समूहों को नहीं ढूँढ़ सकी, जो घटनाओं और परिस्थितियों के केन्द्र में बार-बार लौट रहे थे। इस श्रवण में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, उषा प्रियम्बदा प्रादि की कहानियाँ अपने श्रधुरेपन का पूरा-पूरा अहसास हमें कराती हैं। राजकमल की कहानी 'मदालसा सुन्दरम्' से राजेन्द्र यादव की कहानी 'एक कमजोर लड़की की कहानी' या मोहन राकेश की 'मिस पाल' से तुलना करने पर बात स्पष्ट हो जाएगी। तीनों ही कहानियाँ व्यक्ति के मानसिक अन्तर्विरोधों की कहानियाँ हैं। ये अन्तर्विरोध श्राज के मध्यवर्गीय जीवन के हैं। 'कथ' को लेकर किसी प्रकार की टिप्पणी नहीं करेगा। वंसे शिल्प की दृष्टि से तीनों ही कहानियाँ किसी न किसी रूप में नाटकीय अतिथोनाएँ हैं, मगर फिर भी इनका प्रभाव श्रालग-श्रालग है। राजेन्द्र यादव की कहानी कुंठा पैदा करती है। यही स्थिति मिस पाल की है। मगर मदालसा सुन्दरम् की नायिका में कुंठा नहीं है, अपने विरोध को स्वीकार कर वह उससे ऊपर उठ जाती है। इनके जगल की खोज करने में कोय-कोय के की-गन नहीं बन्दगा। मैं जानस आभावक नहीं हूँ। राजेन्द्र यादव और राकेश की कहानियाँ इसलिए ऐसा प्रभाव डालती हैं कि एक दुहरी खिन्दगी का झूठा-सच उनके (कथा पात्रों के) मानसिक अन्तर्विरोध का कारण बन जाता है। मदालसा सुन्दरम् ऐसी दुहरी खिन्दगी के झूठ की कहानी नहीं है, वस्तुतः वह झूठ का नाटक है ही नहीं? राजकमल एक झूठ की खिन्दगी का भोगा हुआ सत्य नहीं कह पाता। बकील राजेन्द्र यादव : 'जहाँ शब्द हैं, लेकिन सत्य वण नहीं है, वहाँ अनुभूति और अनुभव का केवल अनुमान है।' सचमुच अनुमान की अनुभव कहकर कहानियों का सत्य गढ़ा जाता रहा और प्रचारित यह किया जाता रहा कि कहानी प्रामाणिक भोग की है। वैसे अनुमान का भी भोग किया जाता है, भगवत अनुमान के रूप में ही। राजकमल की मदालसा बूँट कि आख्यायिकाओं की मदालसा नहीं है,

दिसम्बर-जनवरी '६८

१०७

इसलिए वह अनुमान का विषय नहीं है। मरान्तका के लिए देह, गारता, बुद्धि के सारे रास्ते खूबे हैं। यही उसकी सच्चाई का मर्म है।

जिन कहानीकारों ने खोज का भ्रम पैदा किया, उन्होंने ही स्वीकृति-प्रतीकृत को मार्ग को मनस्थिति से बनाया। राजकमल की कहानियाँ गति का भ्रम नहीं गढ़ती। उनमें एक क्षीब-सा ठहराव होता है। वस्तुतः हमारी स्थिति पहचानने की है, खोजने की नहीं। खोज का सही और वास्तविक भ्रम भारत की भावी पीढ़ी तक करेगी। अगर हमें ऐसा कुछ भ्रम हो तो उसे हम दूर कर लें। स्थितियों से घिरा होना ही हमारे लिए उतनी बड़ी सच्चाई है कि हम इन ठोस स्थितियों से भाग कर हँदने का भ्रम नहीं पाल सकते। एकवारगी ही ये स्थितियाँ हमारी मानवीय वास्तविकता को गलत कर रही हैं। हमें अपने को गलत नहीं होने देना है। यही हमारा तात्कालिक संघर्ष है। राजकमल की कहानियाँ इस संघर्ष की उत्तरता की कहानियाँ हैं। राजकमल की कहानियाँ स्थितियों का घोषणा-पत्र नहीं हैं।

नयी कहानी की चर्चा के क्रम में जिन कहानियों को बार-बार डहराया गया है, उन पर एक नजर डें। 'गुलरा के बाबा' के बाबा, 'देवी की माँ' की माँ, 'आर्द्रा' की माँ, 'कर्मगाथा की हार' के व्यापी वृद्ध... इनमें हमारा सत्य कहल है? इन्हें अपने भावुकता की रो में तथाकथित नये कहानीकार क्या मुख्यो-परान्त सत्ता (पोस्पोस एक्विवलेन्स) नहीं दे रहे? क्या इनकी तथाकथित मयता हमारे लिए एक 'डेडवेट' नहीं है? राजकमल मुख्य के बाद की सत्ता के लिए चिन्तित नहीं है... वह चिन्तितप्रस्त है तो अपने परिस्थितियों के सन्दर्भ में, उनके भीतर जीने वाले लोगों के लिए। इन कहानियों की तुलना में 'पदल' सचमच ही श्रद्धा कहानी भी है और जीवनत पात्र भी।

कहानी के माहुर के चिन्तनविचार के साधन का नाम कहानी है। कहानी नहीं दीख पड़ती। हाँ, अपने कहानियों में इस स्वल्प-संसार को काल को संवेदना देकर उतारने की ऐंद्रजालिक चेष्टा जरूर उसने की है। समयखंड की व्यक्ति-समूह में बदल देने का यही प्रश्न है? समय की आदमी को राह से पहचानने का यह तरीका सही तरीका नहीं है, ऐसा कौन कहेगा? अपनी कहानियों में व्यक्तियों और उनकी मूल स्थितियों से घिरा रहने वाला राजकमल चौधरी मुख्य-भार नहीं डोला, उसे यह पसन्द नहीं है। मुझे उसकी कहानियों के भ्रमवार में कहीं ऐसी कोई कहानी नहीं मिलती, जिसमें यह 'नास्टिक' लगाव कहीं व्यक्त हुआ हो। अपने वर्तमान को देखता हुआ राजकमल आशेष का शिकार नहीं हुआ है, ऐसा नहीं कहेंगे। 'खामोश घंटियों के साँप' एक ऐसे ही भावात्मक आशेष की कहानी है। मगर ऐसा बहुत नहीं हुआ।

विषय के प्रति विरोध यदि हमारी विरासत है, तो इसका हकदार दूसरे कई कहानीकारों के साथ राजकमल चौधरी भी हैं। अग्रसर लोग इसे नजरअन्दाज करते आये हैं। मैं लोगों का ध्यान राजकमल की कहानियों के सन्दर्भ में उसके इसी हक की ओर ले जाना चाहता हूँ। डा० नामवर सिंह की जटिलता लेकर कहना हो तो कहेंगे कि कहानियाँ लघुवाद की 'अपराधी प्रत्यारोप' नहीं हैं। उसने न तो आधुनिकता का मूल सूत्रीय तैयार किया है और न अनुभव-तन्त्रों का इन्द्रजाल। उसकी कहानियाँ सीधे उन व्यक्त्तियों से टकराती हैं, जिसमें जीवन गलत किया जा रहा है—नीतिकता, व्यवस्था कागुन और प्रजातंत्र के नाम पर। राजकमल की कहानियों में ऐसी कोई नहीं है। सकेलायों से काम चलाना उसे प्रियकर नहीं है। निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, रमेश बली और दूधनाथ सिंह की कहानियाँ लकतायों का जाल बुनती हैं—अनुभव-तन्त्रों का संयोजन करती हैं। 'खामोश घंटियों के साँप' की अपवाद मान लिया जाय तो ऐसी कहानियाँ राजकमल ने प्रायः नहीं लिखीं। अपने समय के लिए सकेलाय गढ़ने के बजाय राजकमल उसे अपने पात्रों की स्थितियों में मूल करना ज्यादा कारगर समझता है। यह दूसरी बात है कि ऐसी मूल स्थितियाँ उसमें बहुत विविध और दीर्घादिक परिदृश्य वाली नहीं हैं। अन्य समकालीन कहानीकारों में भी कहाँ हैं? समय के प्रतीकों में राजकमल की दिलचस्पी नहीं है, वह उन्हें पात्रों के व्यापार में बराबर डालने की सार्थक चेष्टा करता है। 'पथरी के नीचे दबा हुआ हाथ' व्यक्ति-व्यापार की राह समय को आपत करने का उत्कट प्रयत्न है। अन्य कहानियों में भी ऐसे प्रयत्न देखे जा सकते हैं, जो कि यह भी एक सच्चाई है कि अपने इन प्रयत्न में उसे हर स्तर पर सफलता नहीं मिली। कुछ कहानियाँ इस प्रयत्न में फिलिम प्रीचर में कहाँ ली गयी। 'वाईस रानियो का बाइसकोप' एक ऐसा ही लम्बा कहानी है। इस कहानी की तुलना में 'टेल की बीवियाँ' (पहली कहानी) आज भी अधिक ताजा कहानी है।

देह राजकमल के लिए अपूर्ण सम्मोहन नहीं है। देह को उसने खुद भी कई ठोस स्थितियों के भीतर देखा था और वैसे लोगों को भी देखा था, जो इन स्थितियों के भीतर थे। फलतः देह के प्रति उसमें व्यामोह भ्रमना संभ्रम-जल्प उत्सुकता नहीं है। देह की 'स्थितियों' के अमानवीय और निकलपण लय को जैसी सेल झाड़ो-पिंटो' उसने दी, वैसे दूसरे नहीं दे पाये; न पुश्ताशक्त, न रवीन्द्र कालिया, न जानरंजन। उसकी देह गुप्याहं आंतरिक सूचनाएँ देने का वहना मात्र नहीं है। इन सूचनाओं में उसे कोई

दिलचस्पी नहीं थी, इसे मैं जानता हूँ।

कहानीकार युग के सबलों को इतिहासकार की तरह निर्वैयक्तिक बना कर हल नहीं कर सकता। राजकमल अपनी कहानियों के माध्यम में, मध्यवर्ग का इतिहास नहीं लिख रहा था। वस्तुतः इन सवालों का ऐतिहासिक निदान ढूँढ़ने में उसे गहरी दिलचस्पी भी नहीं थी। फिर भी उसकी कहानियों में मध्यवर्ग का एक सहज परिचय है, जो राजेन्द्र यादव की इषर की कहानियों से ज्यादा सघन और मूल्य है। वस्तुतः समय की व्यक्तिसमूहों में बदल देने में उसे बेहद सकलता मिली है। कहानीकार राजकमल आदमी की पहचान से ही इतिहास को पहचानता और मूल्य करता है। उसकी दिलचस्पी ठोस स्थितियों से घिरे हुए लोगों में है। प्रतीकों की लम्बी शुद्धता गढ़ने वाले कहानीकारों की दिलचस्पी स्थितियों के संकेत-ग्रहण में होती है—ही होता है। इस श्रमपूर्व को वे कभी प्रतीकों के माध्यम से एकड़ना चाहते हैं, कभी उसे ध्वनि-चित्रों में और कभी स्थान-पत्र-काल के कविता-प्रवाह में। तब का आग्रह उन्हें ही सबसे ज्यादा होता है, कहानी-पन को झूठी माँग भी। ध्वनियों के प्रभाव से वे जीवन को बदलना चाहते हैं। राजकमल अपनी कहानियों में जीवन का ऐसा सस्ता सौदा नहीं करता, क्योंकि उसे कलाकार होने का प्रभाव नहीं है। उसे जीवन की किसी क्रीमल पर बदलना स्वीकार नहीं है। जीवन जैसा भी है, उसके लिए नहीं काफ़ी है—अपने प्रकृत रूप में। इसीलिए राजकमल की कहानियों की भाषा गद्य की भाषा है, कविता से उधार ली गई भाषा नहीं। अपने गद्य की पंक्तियाँ तोड़ना भी उसे स्वीकार नहीं है। भाषा के मामले में राजकमल उसका सहज रूप उत्तर भाषा है।

वाक्यभूद इसके, राजकमल की कहानियों में एक तीखा अन्तर्विरोध है। मैं इस अन्तर्विरोध को आभास मानने की स्थिति में नहीं हूँ। यह विरोध उस संवेदना के भीतर का है, जिसके हम सभी शिकार हैं। जब कहीं वह इस अन्तर्विरोध के एक या दूसरे पहलू पर अनावश्यक बल देकर लिखने लग जाता है, तभी उसकी कहानियाँ इलहाम का आभास देने लगती हैं। मगर सीमावर्त से ऐसी कहानियाँ बहुत अधिक नहीं हैं। अपने व्यस्क समकालीनों की तुलना में उसने सचमुच बहुत कम ऐसी कहानियाँ लिखी हैं। वह इस अन्तर्विरोध की नाटकीय सवादाँ और कविता के वक्तव्यों में नहीं बदलता। कविता की भाषा में नाटक के संवाद राजेन्द्र यादव-कमलेश्वर-राकेश-निर्मल वर्मा-उषा प्रियंवदा

११०६ कहानी का चेहरा : सुरेन्द्र चौधरी

लहर

की कहानियों में जायद इसी समयकालीन जीवन के अन्तर्विरोध को गाढ़ा करने के लिए भागे हैं। 'एक कमबोर लड़की की कहानी', 'छोटे छोटे ताजमहल', 'खुले पंख टूटे होने', 'भगमटैक', 'परिन्हे' जैसी कहानियों में यह स्पष्ट कई कई उपचारों से व्यक्त हुआ है। कहानियों की बात छोड़ भी दें तो क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जो आरोग्य जेनेन्द्र ने कलकत्ता-गोव्डी में कमलेश्वर पर लगाये थे, वे ही आरोग्य आज कमलेश्वर हमारी पीढ़ी पर लगा रहे हैं। इलहाम का स्वर इस बार कमलेश्वर का है।

मध्यवर्गीय जीवन के ये अन्तर्विरोध बाहे जिस भी अनुभव-क्षेत्र या स्तर के हों, मगर कहानी के कथ्य के रूप में उनका महत्व अस्वीकारा नहीं जा सकता। प्रामाणिकता की बात भी इसी सन्दर्भ में उठी या उठाई गई। लोगों में अपनी-अपनी और से प्रामाणिकता की व्याख्याएँ कीं। राजकमल ने अनुभव की प्रामाणिकता का सवाल उठाया ही नहीं और उठाया भी तो दूसरे उत्तर के लिए। मुझे ऐसा लगता है, जैसे राजकमल लेखन को झूठ मानने की स्थिति में या ही नहीं। वैसे भी प्रामाणिकता राजकमल के लिए प्रश्न नहीं थी, उत्तर भी। और अपनी कहानियों के माध्यम से वह उत्तर दे रहा था। राजकमल की कहानियों में प्राई मध्यवर्गीय जिन्दगी दिखा-रखन नहीं है, बीमारों भी नहीं है। हमारे काल-खंड की सबसे बड़ी घटना यह है कि समय हमारी वाचकता का आधार बन रहा है—हमसे हथारा नाम, हमारा व्यक्तित्व, हमारी निजता छीन रहा है। मोड़ की सम्पत्ता गही करती है, वह हमें 'भवचक्र के सभी' या पापसं की शब्दावली उधार लूँ तो—'दास मेन' बना देती है। ऐसी स्थिति में 'सबले वाचकता' का श्रक्केला होना एक नियति है। राजकमल एक ऐसी ही श्रक्केली नियति का नाम है। 'पत्थरों के नीचे दबा हुआ हाथ' ऐसी ही

कहानी नियति की कथा है। राजकमल का जगज्जन्म भी एक नियति के तले

है। राजकमल का एक पहलू है। इस संभव की स्थिति का राजकमल अपनी कहानियों में तोड़ सका था, इसे मानना मेरे लिए सम्भव नहीं।

राजकमल की कहानियाँ पण्डित-प्रदर्शन नहीं हैं (लेखो-टिप्पणियों की बात नहीं करता मैं)। व्यावसायिक मुहावरों का पण्डित राजकमल कभी नहीं रहा, यह सेहरा हमेशा दूसरों के सिर बंधा। अपनी कहानियों में सचमुच वह जटिलता और कठिनाता से बचता है। कहानियाँ उसके लिए केवल होने का प्रमाण नहीं हैं, वे अनुभव के लाने-बाने के उस श्रम का भी प्राप्त करने की चेष्टाएँ हैं जिनके भीतर व्यक्त अपने होने के हेतुओं की सही-सही पहचान पाता है। इसी श्रम में राजकमल कोरा अनुभववादी नहीं है। उसकी कहानियों को 'देह-भाषा' मानने वाले और प्रचारित करने वाले लोग आसानी के भारे

दिसम्बर-जनवरी '६८

१११

हुए हैं, यह उन्हें कौन सपनाये ? सम्भोग करने की स्थिति में स्त्री से भाग कर कहानियों में राजकमल स्त्री से सम्भोग नहीं करता। सम्भोग के बाद भी स्त्री उसकी कहानियों का विषय है, उसे कितनी कहानियों से उदाहरत करना होगा ? कहानी के शिल्प को तोड़ने के क्रम में (क्योंकि नयी कहानी के तथाकथित शिल्प में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी) वह कभी-कभी बेहद सरल स्थितिज लिख मारता था। मैंने उसकी कहानी पर टिप्पणी करते हुए एक बार कहा था : 'तुम कहानियों से स्थितियों का काम बहुत ज्यादा लेते लगे हो।' उसने उत्तर में कहा था : 'कुशनचंदर को पढ़ने के बाद तुम्हें अपनी राय बदल लेनी चाहिए। शुक्र है कि मैं कुछ लेखकों की तरह कहानी से नौटंकी का काम नहीं लेता।' स्पष्ट है कि अपने व्यक्त सम्कल्पनों के कथानिर्णय को राजकमल स्वीकार नहीं कर सका। काम तो कम अपने विषय के लिए उसे यह शिल्प निहायत फलदायी और श्रमपूर्ण मालूम पड़ता था। उसकी यह कमजोरी थी कि अपने कहानियों में वह कविता के मुद्दाबारे नहीं ग़र सकता था। वातावरण को जटिल करने के लिए दर्शन की भाषा भी नहीं थी उसके पास। गहरे दार्शनिक मालम-मयन का आभास उसकी कहानियाँ नहीं देती। उसके सपाट परम और तल्ल गद्य में जो धार थी, वह उसका अनुकरण करते वाले घटिया लेखक नहीं ला पाएँ।

राजकमल का कहानी-साहित्य उस भीषण दुःस्वप्न की तरह है जिसमें दृश्य तेजी से बदलते रहते हैं, और अपने बदलते हुए परिदृश्य की भगनकता, विचित्रता से हमें कहें उल्टे जित, कहो शक्तिशाली और कहें अभिभूत कर लेते हैं। ज़ता से हमें कहें उल्टे जित, कहो शक्तिशाली और कहें अभिभूत कर लेते हैं। ये दुःस्वप्न कहें हमें उस आभासवीर्य हृद तक जड़ बना देते हैं, जहाँ आदमी मृत्यु की प्रत्यक्षता को भोग रहा होता है या फिर उल्टे जना की उस हृद तक ले जाते हैं, जहाँ हम आतिमानवीर्य इच्छाओं के साथ लड़ाई प्रारम्भ करते हैं तथा सारी आशाओं, साधनों और उपचारों में विषमता खोकर प्रकटे हो जाते हैं। किन्तु इस भीषण दुःस्वप्न के भीतर जिस ऐन्द्रजालिक विषय में राजकमल हमें उछाल देता है, वह हमारे आँख के विषय का सही अतिक्रम और दुःख-साओं से मरा रूप है, जिसकी यथार्थता प्रकटे अपने भय में सार्वक की थी; जिस अपने भय को पूरा करने के लिए राजकमल को पूरे सम्पन्न-खंड की व्यक्ति समूह में बदल देना पड़ता है—अनुभव के सम्पूर्ण स्रोत से जोड़ना पड़ता है। यह हमारे सम्कल्पीन जीवन का कुल मयाकांत अनुभव है और इसे एक पूरी पीढ़ी का सहयोग मूर्त करता है—चाहे यह मूर्त रूप कितना ही भयानक, आतंककारी, उल्टे और दाइड ऐक्यन से मरा हुआ दैवों न हो ? राजकमल की कहानी में फँकटो की जमीन इसी पाताल-लोक की संवेदना से हमें जोड़ती है। जो लोग इस पीढ़ी के सह भोग के स्तर तक उतर कर इस भीषणता और आतंक के भीतर जाना स्वीकार नहीं करते, उन्हें राजकमल की कहानियाँ एक अतिक्रम दुःस्वप्न की तरह ही सताएँगी। ●

लहर

११२। कहानी का बेहता . नुरेद चौधरी

एक अशरीफ कहानीकार :

राजकमल चौधरी

वर्मेन्द्र गुप्त

'सामुद्रिक', 'जीम पर बूटों के निशान', 'प्रेतप्रिया' आदि कहानियों के लेखक राजकमल चौधरी ने उस समय कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया, जब कविता को पीछे छोड़कर, और आंचलिकता के प्रभाव से भी अपने को मुक्त करके कहानी शहर की सीमा में प्रवेश कर चुकी थी। बहुत लामोशी से राजकमल ने कहानियाँ लिखना शुरू किया। प्रारम्भिक कहानियाँ कलकत्ता महानगर पर ही लिखी गयीं, लेकिन बिना किसी वक्तव्य के, वर्गेर किसी पूर्व आडम्बरपूर्ण घोषणा के। 'जीम पर बूटों के निशान' कहानी १९५६ में प्रकाशित हुई थी, फिर 'सामुद्रिक' और इसी प्रकार की दूसरी महत्वपूर्ण कहानियाँ... लेकिन इन महत्वपूर्ण कहानियों का सिलसिला लम्बा न हो सका। १९६३ का वर्ष बीतते न बीतते राजकमल ने अपने को ही कहानी बना डाला। वक्तव्य, लम्बे लम्बे वक्तव्य, ऊबड़-खाबड़-सी लम्बी कविताएँ, ढेर पत्र, और कहानी के नाम पर स्थितिजन, बहुत ही मंजा हुआ स्थितिजन।

लेकिन क्या कहानीकार राजकमल चौधरी इस दुर्भाग्य के लिए प्रकटे ही जिम्मेदार है। बहुत सफाई से वह अपने को आंचलिक लेखक घोषित कर सकता था, जब इलाहाबाद का भ्रमना से भ्रमना नौबान हल और बैल का नाम जप कर आंचलिक हो रहा था, उस समय गाँव में जन्मे राजकमल के लिए अपने को आंचलिक घोषित करके पेशेवर आलोचकों से तमगा लेना कठिन न था। मगर उसका रुमान शहर की ओर था और इस सच्चाई को वह अपनी कहानियों में

दिसम्बर-जनवरी '६८

११३

भुज्या न सक। पापय उस समय राजकमल भावुक भी था। तभी तो उसने यह सोचा कि उसकी शब्दों कहानियों को पढ़ कर येगेवर भालोचक उसकी प्रशंसा करेगा। मगर वह यह भूल गया कि हिन्दी के येगेवर भालोचक का पहला धर्म राजनीति ही है। इसीलिए वह भवसर मिलते ही कम्प्यूटिस्ट पार्टी के टिकट पर पाठ्यपेष्ठ का चुनाव लड़ता है और फिर वही हार जाने और जमानत जन्म हो जाने के बाद जीवित रहने के लिए साहित्य में भा जाता है। भले ही उसकी यह भवसरवादित कितने ही भावुक लेखकों के लिए मरण का कारण हो क्यों न हो जाये। राजकमल पुरुष था, और इसीलिए उसने बदला लिया। उसकी कलम से वह सब सामने आया, जिसको देखकर परम्परावादी लोग कानों पर हाथ रखने लगे। उसके वक्तव्यों ने सभी को चौंकाया। उसकी शराब, माँग, और चरस पीने की गथाओं ने लोगों को उसकी ओर मोड़ा। अपने पत्रों से उसने अपने को अपने बारे में सोचने पर मजबूर किया, और तब येगेवर भालोचक के हजार बार नकारने पर भी राजकमल चौधरी चर्चा का विषय बन गया। हाँ, इस सब के बीच वह कहानी लिखना छोड़ चुका था, क्योंकि कहीं न कहीं उसके मन में बदले की भावना थीन कहीं न कहीं वह हर तरह के बार से पड़यन्त्र को तोड़ देना चाहता था।

बहुत कम समय दिया राजकमल ने अपनी कहानियों को। लेकिन शायद वह उन सभी तथाकथित आंचलिक, कच्चे और शहरी कहानीकारों से आगे है, जिन्होंने कागज तोल तोल कर और हर अच्छे बुरे नाम से अपने को छपाया। उसके कहानीकार ने कलकत्ता को पृष्ठभूमि में रख कर लिखना शुरू किया। 'जीम पर बूटों के निशान' उस स्थिति की कहानी है, जिसमें इंसानी रिश्ते सतही हो कर रह गये हैं। चार पात्र हैं कहानी में। चारों सारी बात की अपनी ओर मोड़ना चाहते हैं। उनकी हँसी में, उनके देखने-परखने में, उनकी बातचीत में, सिर्फ उतनी ही दूर तक अपनी है, जहाँ तक कि उनका स्वार्थ है। जिनगी द्रष्ट चुकी है, उसे जोड़ने की मादुकता कोई पात्र अपने भन्दर नहीं रखता। सिर्फ टूटी हुआ जो हिस्सा जिसके पास आता है, वह उस दूसरे टूटे हुए हिस्से से थोड़ा बतकर अपने को ग्रहमितय देना चाहता है, और इस भवसर को भी पाना चाहता है। जब कि दूसरा टूटा हुआ हिस्सा भी उसके कब्जे में आ जाये।

श्रीनज्ज रेखा, चौरींगी रोड, वायुश्री सिनेमा, और इन सब के बीच जो जाता-वरण उभरा है, वह उन सबसे आना है, जिसमें प्राधुनिकता, यथार्थ, आज के जीवन के नाम पर किशोर मन के लिजलिजे रोमास का चित्रण किया जाता है।

११४। एक श्रमरीक कहानीकार : राजकमल चौधरी : धर्मोद गुप्त लहर

'प्राधुनिक' राजकमल की दूसरी श्रेष्ठ कहानी है। बस पर चढ़ती लड़की से नायक के शरीर के छू जाने, कानिज के कोरीडोर में चोरी छुपे मिल कर कुछ हँसने, आफिस की टाइमिस्ट से प्रीव लड़ने, या बहुत हुआ तो कलना में नायिका के प्रति एक 'फनाइंग किस' को ही शेरस सम्माने बातों में अगर 'साधुदिक' की चर्चा न हुई या उसको तरह तरह के पुकीटे बारज करने वाले बुरावर लोग समझ न पाये, तो कोई आश्चर्य नहीं। विषय की उद्यमे रूप से लेना राजकमल ने नहीं सीखा। शेरस पर उसका अध्ययन गहरा था। सिर्फ मुनकर ही नहीं, गम और ठन्डे लोहे को ड़कर भी उसने देखा था, इसलिए उसकी कहानी 'साधुदिक' अपने में एक मधुगुल रचना बन गई।

कहानी में सिर्फ तीन पात्र हैं, इनमें भी दो नारी पात्रों के मन का द्रष्ट, उन के बीच उभर आया भलाभाव, धर्ममर्वा का बाध, और एक ऐसी स्थिति, जिसमें बहुत कुछ कहना चाहते हुए भी कुछ कहा नहीं जा सकता। राजकमल ने बहुत सारे शब्दों में इस सबका चित्रण किया। उसके पास विभिन्न शैली थी, साथ ही कवि हृदय भी उसने पाया था, इसीलिए कहानी का ताना-बाना दीया के समुद्र तट पर जुना गया। दूर तक फैला समुद्र का विस्तार, और किनारे पर श्रमहाय से खड़े हैं, 'साधुदिक' कहानी के तीनों पात्र।

यह कहानी शरीर की भी कहानी कही जा सकती है। मगर इस कहानी के लिए कोई भी श्रमलीला का आरोप नहीं लगा सका। यह निसन्देह एक पड़यन्त्र ही माना जायेगा कि राजकमल को अगर याद भी किया जाता है, तो 'जलते हुए मकान के लोग' या फिर 'भूगोल का प्रारम्भिक ज्ञान' से।

जब कि सही ये है कि यह कहानियाँ नहीं, सिर्फ राजकमल का आक्रोश है, जो उसने उन सभी के प्रति व्यक्त किया है, जिन्होंने आज हिन्दी कहानी को राजनीति में तरह तरह के नारे देकर उलझा दिया है।

राजकमल ने शहरों पर कहानियाँ लिखीं। राजकमल ने कहानियों में शेरस को प्रधानता दी। राजकमल ने जबान शरीर को अपनी पंती नजर से देखा। लेकिन इस सब के बीच उसकी लेखनी की परिपक्वता ही सामने आई। वह उन थोड़े से हिन्दी कथाकारों में से एक है, जिन्होंने मध्ययुगीन तरल रोमांस से कथा को पुर्णतः दिलाई। यह भी कितना विचित्र है कि जो लोग कभी कम्प्यूटिस्ट पार्टी के चवन्ती के मेम्बर थे और प्रगतिशील होने का दावा करते थे, उन्होंने अपने भन्दर छिपे बोजुआपन के कारण, या कि अपने शरीर की हीनता के कारण यौन जीवन के सतही उदाहरण प्रस्तुत करके तथाकथित 'नयी कहानी' के लेखक होने का दावा किया, जब कि राजकमल चौधरी, जो न केवल अपने कथ्य, बरन, अपनी अभिव्यक्ति, के कारण एकदम ताजा और प्राधुनिक लेखक

था, 'पुरानी नयी', किसी भी कहानी में उछाल न पा सका। लेकिन यह उसका दोष नहीं, दोष उसका यह है कि वह बहुत जल्द षडयन्त्र की स्थिति से उकता गया और बदला लेने के लिए तैयार हो गया।

'नदी बहती थी' बाराबाहिक 'विनोद' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इस का केनवास बहुत विस्तृत था, मगर यह बाद की बहुत सीमित पुष्टी में प्रकाशित हुआ, इसीलिए प्रारम्भ मन को जितना बांधता है, अन्त में उस सीमा तक पकड़ नहीं है। रचना को जल्द समाप्त कर देने के अनेक कारण हो सकते हैं। इसलिए रचना को इस दृष्टि से न देखकर, देखना यह है कि इसमें लेखक ने जिस बातवरण, जिन पात्रों को उभारा है, क्या वैसा अन्य भी मिलता है? राजकमल अपने पात्रों के साथ बहुत कठोर हो जाता था, यह रचना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। सारे आदर्शों के बाद आज का जीवन जितना तंग है, जितना खरा और बेईमान है, उस सब का चित्रण इस लम्बी कहानी तथा राजकमल की दूसरी रचनाओं में मिलता है। 'जलते हुए मकान के लोग' कहानी में सम्भोग की क्रिया के बीच भी सारे पात्र एक दूसरे के प्रति क्रूर और तनाव के साथ झलम-झलंग हैं। 'नदी बहती थी' में भी परम्परा से दिये गये रिश्तों के बावजूद, सभी एक दूसरे से झगलते हैं। शरीर अगर कहीं एक दूसरे को जोड़ता भी है, तो 'भूल' के कारण, जिसमें एक क्षण का मिलन झलगाव की बहुत बड़ी दूरी को जन्म देता है। एरिस्टोफेट समाज पर लिखी गई राजकमल की कहानियाँ व्यंग्य की कोटि में आती हैं, जहाँ सभ्यता के नाम पर बहुशीघ्रन है, जहाँ संस्कार और परिवार के नाम पर सिर्फ कमीनपन ही बाकी बचा है।

राजकमल उन लेखकों का प्रतिनिधित्व करते की सामर्थ्य रखता है, जिन्होंने किसी से उधार लेकर अपने को झलझल करने का प्रयास नहीं किया। उसके लिए सबसे बड़ी गाली यी: 'प्रेमचन्द की परम्परा'। और यह उस समय उसके लिए गाली थी, जब कस्बे और गाँव के लेखक का विल्ला लगाकर लोग प्रेमचन्द की परम्परा की गाड़ी खींच रहे थे। आधुनिकता की पहली शर्त विद्रोह है। और अगर राजकमल में किसी दूसरे रूप में विद्रोह न देखने का आग्रह ही मन में समाया हुआ है, तो भी इतना तो देखा ही जा सकता है कि उसने कभी भी शरीर भादमी बनने की कोशिश नहीं की। हिन्दी में बंगाल की भूखी पीढ़ी के लिए उसी ने प्लेटफार्म तैयार किया। यानी कहो न कहीं वह उस विद्रोह का समर्थक था, जिसके नाते 'बंगाल की भूखी पीढ़ी' के नोजवानों ने अपने को आगे बढ़ाया।

राजकमल आर्ज अपने मूल्यांकन के लिए किसी से भी आग्रहशील नहीं है, पर उसकी वे सारी कथाकृतियाँ 'मूल्यांकन' शब्द के लिए कसौटी बन गयी हैं, जिनको उसने अपने खरे लेखक मन से रचा है। • •

११६। एक भ्रष्टाचार कहानीकार : राजकमल चौधरी : धर्मनंदा गुप्त लहर

राजकमल चौधरी के उपन्यास

मयुरेश

नयी पीढ़ी के लेखकों में राजकमल चौधरी का लेखन सर्वाधिक विवादास्पद रहा है और यह कहना बहुत हद तक सही है कि अपने साहित्य और स्वयं अपने बारे में भी, बहुत से विवादों और गलतफहमियों को फैलाने की जिम्मेदारी स्वयं उनको है। जब कोई नया रचनाकार स्थापित मूल्यों के अस्वीकार को मंजूर करता है तो उसकी बात समझ में आती है लेकिन जब वह सारा कुछ भ्रष्टाचारियों के जीवन संस्पर्श के अभाव में महज चमत्कार और ज्ञान-प्रदर्शन के लिए किया जाता है तो तेजी से होने वाले व्यक्तिगत और सामाजिक परिवर्तनों एवं संक्रमण को व्यक्त करने वाले हाइ-मांस के सामान्य मनुष्यों के स्थान पर ऐसे पात्रों की सृष्टि होने लगती है जिनको कोई सामाजिक भूमिका नहीं होती और उनके माध्यम से यदि किसी नैतिक या सामाजिक स्खलन को स्पष्ट करने की कोशिश की भी जाती है तो वह अधिकतर नकारात्मक होती है। और फिर यह तो और भी अजीब लगता है कि संक्रमण की इस मयावह स्थिति में नये मूल्यों की आस्थापूर्ण तलाश के बजाय नया लेखक मूल्यों के प्रति सिर्फ उदासीन ही नहीं रहता बल्कि उनके अस्तित्व और आवश्यकता को भी नकारता है। और जब यह स्थिति पैदा होती है, नैतिकता उसके लिए गाली मालूम देती है और साहस को वह मानवीय दुर्बलता समझने लगता है। प्रेम, दान्यव्य, सुख, परिवार और समाज जैसे शब्द आज के सन्दर्भ में निहायत भ्रष्टहीन हो उठे हैं। विखराव और दायित्वहीनता जैसे आज की जिन्दगी के सही पर्याय

दिसम्बर-जनवरी ६८

है?....बड़े रहने में क्या सुख है? अगर धूमकेतु की तरह चमक कर बुझ जाने की सम्भावना हो, तो क्यों नहीं टूट लिया जाये? क्या होता है प्रेम? क्या होता है दाम्पत्य सुख? क्या होता है परिवार? क्या होता है समाज?' मविष्य की बात वह नहीं करता क्योंकि उसके लिए फिर उसे विषवास नहीं है। वह महज वर्तमान के लिए है : '....बीते हुए का पछतावा नहीं। को जिये जाना। पहले अंधेरा था। -फिर-अंधेरा होगा। अभी अगर रोशनी की एक हल्की-सी भी किरन बाकी है तो उसे जी लो। यह किरन जिन्दगी है। ये किरन....ये फूल'। अतीत और वर्तमान से कटकर क्षण में सीमित हो जाने का यह दर्शन कोई नयी चीज नहीं है। इसके प्रति आर्कषण और आग्रह का सबसे बड़ा कारण ही यह है कि वह व्यक्तिगत और सामाजिक दायित्वों की ओर से मुँह मोड़कर बिलराव और पलायन की सुविधा देता है। राजकमल चौधरी का लेखन किन्हीं उपलब्धियों से अधिक सम्भावनाओं की बात कहता है। उनके कृतित्व का कोई रूप सुनिश्चित एवं सुस्थिर हो सकता, उससे पहले ही सब कुछ समाप्त हो गया, राजकमल के ही शब्दों में 'धूमकेतु की तरह चमककर बुझ गया'....उनका अधिकांश लेखन पत्र-पत्रिकाओं में दबा पड़ा है। पुस्तक रूप में एक लम्बी कविता के श्लोका चार-पाँच छोटे उपन्यास हो जैसे-जैसे उपलब्ध है। किसी निश्चित सूचना या जानकारी के प्रभाव में काल कमजोर उन्हीं देखकर लेखक के विकास सूत्रों को खोज सकने की स्थिति भी नहीं है। ऐसी हालत में उनकी उपलब्ध रचनाओं को लेकर उनकी मूलभूत विशेषताओं और सामान्य प्रकृति की चर्चा ही किसी हद तक सम्भव है। उनके उपन्यासों में 'नदी बहती थी' ही सबसे पहले प्रकाशित है। उससे भी पूर्व वह धारावाहिक रूप से एक पत्रिका में छप चुका था। इससे यह अनुमान सहज है कि वह उनकी प्रथम रचना है। उस उपन्यास की पढ़ने के बाद, यदि तब तक राजकमल के और उपन्यास पढ़ नहीं रखे हैं तो, कुछ यह प्रतिक्रिया होती है कि जीवन के बहुविध अनुभवों के रूप में काफ़ी कच्चा माल लेखक के पास है। कला का अनुशासन और अनुभूतियों का संस्पृश यदि वह विकसित कर सका तो प्रागे कभी कुछ महत्वपूर्ण चीज वह शायद दे सकेगा। लेकिन किसी भी प्रकार के विकास का कोई सुनिश्चित क्रम राजकमल के लेखन में

१. नदी बहती थी—पृ. सं. २७

२. मछली मरी हुई—पृ. सं. ६३

११८। राजकमल चौधरी के उपन्यास : मधुरेश

सहर

कभी भी प्राप्त नहीं हो सका। लेखक की तरह बिबराव ही नंगे उसके लेखन की भी प्रविचार्य नियति है। सोनाली और सोमेज गाँतुनी के रूप में काफ़ी कुछ सहज सामान्य-से पात्र उसमें थे। सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों के प्रति सिकर्ण दृष्टि ही नहीं, बरन् उस सबसे नम्रने की दृढ़ता भी सोमेज में थी इसीलिए शायद विमल ठाकुर ने उसके बारे में कहा था : 'ही इन् ए वाइव्ड फ़ायर' नेताओं और राजनीतिक पाटियों। पर लेखक ने खुलकर आक्रोश व्यक्त किया था और किसी हद तक सम्पूर्ण स्थिति के लिए एक सम्पुर्णित का भाव वही विद्यमान है। लेकिन एक ओर उसमें वहाँ ये गुण थे, जो लेखक की सम्भावनाओं और क्षमताओं के प्रति विश्वास पैदा करते थे, वहीं उसमें राजकमल की वे सारी कमियाँ भी एक साथ उपलब्ध थीं जो प्रागे चल कर बहुत तेजी से पूरी तरह विकसित होकर उनके सम्पूर्ण लेखन पर छाती चली गयीं। शिल्प को लेकर उनमें जबरदस्त बिलराव है। साहित्य और फिल्मों के प्रति लेखक की गहरी रुचि है जिनसे वह अक्सर ही चमत्कार पैदा करने की कोशिश करता है और बहुत से ऐसे पात्र भी उसमें हैं जो जीवन्त अनुभूतियों के आभाव में चमत्कार की भातिगवाजी के अन्तर्गत की तरह सुरसुराकर बुझ जाते हैं। एक ओर जहाँ उसमें जनता से जुड़ने की लालसा है, सोनाली, गाँतुली, शेफाली, सुभाष आदि के माध्यम से, वहीं दूसरी ओर स्थापित मूल्यों के प्रति गहरा आक्रोश भी उसमें है। शिल्प के स्तर पर ही नहीं, जीवन में भी बिलराव और उत्तरदायित्व से पलायन के तत्व उसमें मौजूद हैं। दृष्टिहीनता की ही गर्व और गौरव की चीज सम्भ्रमे की भावना भी उसमें है। सोनाली के सौन्दर्य के सन्दर्भ में कहा गया है कि वह निरुद्देश्य है जैसे हर महान कलाकृति निरुद्देश्य होती है। इसीलिए सामाजिक विसंगतियों की चेतना और स्थापित मूल्यों के प्रति गहरे आक्रोश के बावजूद कोई जीवन-दृष्टि उसमें से उभर नहीं पाती है। लेकिन तूँ कि वह जीवन से जुड़े रहने की चेतना से सम्पन्न है इसलिए इस कमी की ओर उस हद तक ध्यान नहीं जाता है। लेकिन उसके और प्रागे की कृतियों में जिनका लेखनकाल सिकर्ण पाँच वर्षों तक सीमित है, यह अच्छे और शक्तिशाली तत्व विरल होते गये और बिबराव, पलायन, दृष्टिहीनता एवं चमत्कार प्रदर्शन के तत्व क्रमशः अधिकता से पाये जाने लगे। सामाजिक असंगतियों एवं स्खलन के दर्शन बाद में भी होते हैं लेकिन बहुधा ही वे आपने में साध्य बनकर आते हैं और उनकी दृष्टिहीनता एक प्रतिवार्य मूल्य-मूढ़ता को पैदा करने में सहायक होती है।

स्थापित सामाजिक मूल्यों के विरोध की स्थिति में लेखक को कभी-कभी ऐसा भ्रम भी होता है कि इस विरोध की चरम परिणति उसे नंगापन ही है। और

दिसम्बर-जनवरी '६८

११९

तब तो यह स्थिति और भी भयावह हो जाती है जब वह नंगपान हो एक साधु और मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाने लगता है। जब कोई इस प्रवृत्ति का विरोध करता है तो प्राधुनिकता और विद्रोह की दुहाई दी जाती है, भालोचक पर पिछड़ेपन का आरोप लगाया जाता है और यदि सम्भव हुआ तो उसी दिग्गज लेखक-भालोचक के मन्त्रियों को मूल सन्दर्भ से भ्रमण करके अपनी बात की दलील के तौर पर पेश किया जाता है। राजकमल चौबरी के 'एक भगार : एक बीमार' को लेकर बहुत कुछ यही स्थिति है। उसकी भूमिका में कहा गया है : 'ईश्वर और सीता के माध्यम से इसमें कलकत्ता के समकालीन मध्यवर्गीय जीवन को प्रभाव विरोधभासों में लिखने की कोशिश हुई है। सच लिखना 'एक भगार : एक बीमार' के लेखक को बेहद पसन्द है। ऐसा या प्रतिष्ठा के लिए मनगढ़न्त या झूठ लिखना उससे नहीं हुआ। सब लिखने में जो भी खतरे हैं, उसने बर्दाश्त किये हैं।'.....कोई भालोचक उसके नंगपान को नंगपान न कह सके, इसलिए ऐसे भालोचक को 'नामद' या 'पुलिस मनोवृत्ति का भालोचक' कहकर उसका मुँह बन्द करने की कोशिश की गई है और अपने मन्त्रव्य की पुष्टि के लिए निहायत गलत सन्दर्भ में, आचार्य नतिन विलोचन शर्मा के कुछ वाक्य उद्धृत किये गये हैं। इसमें कोई शक नहीं कि 'एक भगार : एक बीमार' का मूल और वास्तविक कथ्य यही है कि अर्थभाव के कारण निम्न-मध्यवर्गीय लोगों की किस प्रकार कुत्ते बिलियों की जिन्दगी जीनी होती है-जिस पर उनका कोई वश नहीं होता और उससे निष्कृति की इच्छा भी फिर धीरे धीरे स्वयं ही मर जाती है। लेकिन इसके लिए पूरे उपन्यास में जो उपकरण जुटाये गये हैं, उन सबका हवाला देना भी नामुनासिब लगता है। सीता की जिन्दगी के उस नरक की जिन गन्दे शब्दों के ज़ोरों और भी गन्दे ढंग से उजागर करने कोशिश की गई है, वे सब एक जगह तो शायद किसी कोकशास्त्र में भी न मिल सकें, वह सारा कुछ जित्तल मनःस्थिति का ही सूचक है। उस सबके पीछे कोई प्रयोजन नहीं है। सस्ते स्तर का चमत्कार पैदा कर सकने के लिए वह सब कुछ किया गया है और यह देखकर सचमुच हैरत होती है कि ईमानदारी और निर्मयता की आड़ ले कर ऐसा विडम्बनापूर्ण नाटक भी खेला जा सकता है।

चमत्कार और ज्ञान-प्रदर्शन का यह आग्रह राजकमल में और भी कई स्तरों पर प्रकट होता है। कथ्य के स्तर से शुरू होकर उनकी भाषा-शैली और सम्पूर्ण श्रमिव्यक्ति की राह यह अर्थहीन लम्बी यात्रा चलती है। आज के

१. 'एक भगार : एक बीमार' की भूमिका

१२०। राजकमल चौबरी के उपन्यास : मधुरेश

नहर

जीवन में कमा-साहित्य की सायंकता हो यह है कि मध्यमजीव व्यक्ति को जटिल से जटिल प्रभुश्रुतियों को उसमें बड़ी ईमानदारी और शास्त्रयुक्तक स्पष्टता से श्रमिव्यक्ति मिल सकी है। लेकिन ऐसा कि कह चुका हूँ, जीवन के प्रति राजकमल का आग्रह, उनकी पहली कृति के बाद से ही क्रमशः कम होता गया है। बाद की उनकी श्रविकतर कृतियाँ ग्राहकों के नामों, साहित्यिक एवं फ़िल्मी उपमाओं-सन्दर्भों, कलाकारों, संगीतज्ञों, या जहाँ भी जिसकी बंसी ज़रूरत हो, के नामों के प्रच्छेदों-सन्दर्भों से भरती हो गई हैं। ज़रूरत-गैरज़रूरत वह इन सब का उपयोग करते हैं। अपने पात्रों की शान्तिरिक्त प्रावश्यकताओं का ध्यान उन्हें इतना नहीं रहता जितनी कि यह समस्या कि वह सारा कुछ जो उनके मन में है किस प्रकार बाहर निकल कर उनके सब कुछ जानने और पढ़े होने का रोब गालिब कर सके। जब भी ऐसी स्थिति आती है, कभी-कभी तो बेहद भुंभलाहट से पैदा होती है। एक शुबनशील कलाकार के लिए सबसे अधिक अध्ययन मनुष्य की प्रवृत्तियों और प्रभुश्रुतियों का ही होना चाहिए। और यदि ऐसा न हो कर कन्म-कदम पर यह प्रहसास बना रहे कि प्रामाणिक प्रभुश्रुतियाँ एवं जीवन के वास्तविक साम्राज्यकार की अपेक्षा लेखक की रचि दूसरी बेजलरत चीजों की ओर अधिक है तो खोफ की यह प्रतिक्रिया बड़ी स्वाभाविक-सी हो जाती है। नये लेखकों में सबसे अधिक यह दुर्बलता राजकमल में है और कभी-कभी तो वह लेखक द्वारा बड़ी मेहनत से निर्मित प्रभावों की बड़ी बेरहमी से झकझोर कर भूमिदाप कर देती है। 'बीस रानियों के बाइरकोप' का शिवाजी सिंह फ़िल्मों के सस्तेपन के प्रति गहरी विवृष्टता रखता है गो कि भ्रमसर वह खुद भी वही सब कुछ करता रहता है। यह करना उसकी मजबूरी है क्योंकि जब कभी वह अपने सपनों और महत्वाकांक्षाओं की बात करने लगता है तो लोग समझते हैं कि वह अधिक पी गया है। कुन्दन से वह कहता है : 'ताकत तुममें है और मुझमें भी है लेकिन हम लोगों की पढ़िमनी भाँड़ों के पाले पड़ गई है।' लेकिन इन पीड़न-पूर्ण विसंगतियों का प्रभाव जल्दी ही चुक जाता है जब उसी कहानी का नरेटर, होटल का बेयर, बहुत-सी स्तरीय विदेशी फ़िल्मों के भलाबा कालिदास, सहजता से करता है जैसे 'टिप' के पैसों का हिसाब कर रहा हो। राजकमल का पूरा साहित्य इस दोष से भरा पड़ा है। ऐसा नहीं है कि उदाहरण के लिए इशर-उधर से तलाश करती पड़े। किसी भी उपन्यास के किसी भी पन्ने पर वे आसानी से मिल सकते हैं :—

१. 'बीस रानियों का बाइरकोप' : 'अलिएमा' (त्रैमासिक, संख्या ३) पृ० सं० ५५

दिसम्बर-जनवरी '६८

१२१

(१) जिस कमरे में तरवीर नहीं हो, मुझे यह कमरा घर-मा नहीं लगता....
कहाँ हुई मूढ़ ही तस्वीर बन जाऊँ। बे नो या रेगों या कबेज्ज या माने की
(२) मीनल भाइ होबन की तरह डुबली-पतली नहीं है। मोटी न सही, उसके
भय-भय भरे पूरे हैं और इतने मल-व्यस में वह पूरी औरत लगती है।
मयूता बेरगिल के किसी सेल्फ पोर्ट्रेट की तरह.....

(३) निर्मल प्रादमी नहीं है, मयकर राक्षस है। यह प्रादमी नहीं है—यह
महाकवि गोएले का 'मेकिस्टो' है। शेक्सपीयर का 'मोथेनो'... एमिलब्राटे का
हैथक्लिफ... यह प्रादमी शैतान है।^१

नाम गलत लिखे या छपे होने से यह भुल्लाहट और भी बढ़ती है और
उपमाओं के रूप में इन साहित्यिक सन्दर्भों की अर्थहीनता तब प्राप ही स्पष्ट
हो जाती है जब दूसरे पात्रों पर इनको लादकर उनकी अपनी मनस्थिति
एवं मानसिक अपेक्षाओं और विकास के साथ मनमाना खिलवाड़ किया जाता
है। उदाहरण के तौर पर निर्मल के बारे में जो भी कहा गया है, वह लेखक
का अपना मन्तव्य एकदम नहीं है। उपन्यास के अन्त में निर्मल इसलिए
दण्डित होता है क्योंकि वह व्यापार की दुनिया में गलत समझौतों से ऊपर
रहकर नेक और ईमानदार व्यक्ति बना रहना चाहता है। उसके बारे में यह
सारा कुछ सोचता है विषयजीत मेहता जो एक पूर्ण व्यापारी होने के साथ
ही निर्मल का जबरदस्त प्रतिद्वन्द्वी भी है। ऐसी हालत में स्पष्ट ही यह
लेखक की भावनाओं और विचारों का निहायत फूहड़ और अद्वैतानिक
प्रक्षेपण है। साहित्य में जब भी ऐसी स्थिति आती है, विकृत और विकलांग
पात्रों के अलगाव हमें कुछ नहीं मिल पाता है। कम से कम ऐसे पात्रों का
सृजन असम्भव हो जाता है जो शीघ्रतः व्यक्ति की शीघ्रतः श्रुतियों को व्यवहृत
कर सकें। 'मछली मरी हुई' के बारे में कहा गया है कि वह 'अर्थवचक और
लेखिका' के बारे में है—अर्थात् उसके दो पक्ष हैं, एक तो व्यापारिक दुनिया
की नीचता और स्वार्थपरता की चीड़-फाड़ और दूसरे स्त्रियों के समर्पणिक
सम्बन्धों का प्रकाशन। जहाँ तक व्यापारियों की पतित और अष्ट दुनिया का
सवाल है, सारी अतिरिक्त और अविश्वसनीय बातों के बावजूद उसके पीछे
प्रयोजन है लेकिन जहाँ तक स्त्रियों के समर्पणिक सम्बन्धों का प्रश्न है, क्या
वह वाकई कोई ऐसी चीज है कि तूँ कि हिन्दी में अभी तक ऐसी कोई चीज

२. देहगाथा—पृ० सं० १८
३. देहगाथा—पृ० सं० २०
४. मछली मरी हुई :—पृ० सं० ७६

१२२। राजकमल चौधरी के उपन्यास : मधुरेश

गहर

नहीं है इसलिए उस बड़े प्रभाव की सम्पत्ति होनी ही चाहिए? और कम से
कम इन बरातन पर कोई मनभेद प्रसरण है कि इसके प्रभावों को उनके
लिखे जाने की कोई सार्थकता है या स्वयं लेखक के मन में भी इसमें निम्न कीर्ति
प्रयोजन रहा है। उपन्यास के एक प्रख्याप में पूरे विस्तार और बड़े बर्ण के साथ,
बहुल शोषण के बग से, लेखक उन सारी कितारों की चर्चा करता है जिनमें
स्त्रियों के समर्पणिक सम्बन्धों का चित्र है। इन सारे चमकारों में उत्तमकर
राजकमल दृष्टिग्राही अपनी शक्ति का शाय करते रहे हैं और चाहे प्यारी या मिथ्या
हो या कल्याणी या फिर निर्मल पद्मावत हो या डॉ० रघुवंश किसी का भी
चरित्र कोई प्रभाव नहीं छोड़ता है क्योंकि वे सब ही क्या साहित्य की अपेक्षा
आश्रयों की पूरा करने में असमर्थ रहते हैं—यानी वे कहीं भी शीघ्रतः प्रादमी
की शीघ्रतः श्रुतियों को सहज-सामान्य ढंग से कहें भी रेखांकित नहीं करते
हैं। राजकमल चौधरी ने कल्याणी और निर्मल पद्मावत के बारे में खुद
कहा है—अस्वाभाविक एवं काल्पनिक। प्रकारान्तर से, कुछेक प्रभावों को
छोड़कर, उनके सारे पात्रों के बारे में कमोबेश यही स्थिति है। जैसा कि
स्वयं राजकमल के बारे में तरह-तरह की बहुल-गो बातें कही गईं, उनके
जीवन के विवरण और असन्तुलन को ले कर, उनके साहित्य के अविकारा पात्र
भी इन दो प्रवृत्तियों के शिकार हैं।

यह पलायन और विखराव सामाजिक विसंगतियों को देन है, अविकारा में उन
विसंगतियों की बेतना भी राजकमल को है लेकिन उनकी कभी यह कोशिश
नहीं रही कि उन विसंगतियों के मूल-भूत कारणों की खोज करके उन
विकृतियों के खिलाफ किसी भी स्तर पर संघर्ष की कोई बात वह सोचने।
ऐसा करने के बजाय उन्होंने शराब, अफीम, गाँजा या फिर ऐसे ही या इनसे
मिलते-जुलते किसी और नशे में खुद को गार्क करके सब कुछ को भूल जाने की
कोशिश की। 'गहर या शहर नहीं था' में उस सामाजिक स्वलन और नैतिक
अष्टाचार को सारी मथावहता के साथ उभार सकने के बावजूद उसकी कोई
सार्थकता नहीं है। उसमें चञ्चित जीवन महज सतही और श्रुतहीन है।
यही कारण है कि बहुत से पात्रों के लम्बे-चोड़े जुलूसों के बावजूद वह कुछ
नहीं है। इसका प्रमुख और सर्वोपरि कारण है कि लेखक कहीं भी स्थितियों
से जुड़ना नहीं चाहता—सम्पृक्त जैसे कोई अराध हो। इस सिलसिले में
उसके एक अन्य उपन्यास की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

“... मैं कुछ नहीं कहता। कहने सुनने का पेशा भेरा नहीं है। मैंने सिर्फ देखा है
और देखने वाली आँखें भेरी अपनी हैं और किसी दर्शन या भिड्दान से उधार
ली गई नहीं हैं।”... या फिर, “... सारी फिलासफी, सारे दर्शन-शास्त्र मिथ्या-

१. देह गाथा—पृ० सं० २६

दिसम्बर-जनवरी १६८

कथाओं के बगल है। सब सिर्फ इतना ही है कि हम सभी नाथ के पुत्र हैं। काष्ठेष्ट चित्र के पुत्र हैं। हम नहीं खेतते, परिरक्षित्य। हम से खेतती हैं।' इससे कहीं भी सामान्य व्यक्ति बने रहने की कोशिश नहीं है जिसका संकेत को लेकर सब कहीं राजकमल ने इस भाव पर बल दिया है कि वह उसमें भाव है केवल विचारों के धरातल पर ही पूरा उतरता है वैसे वह कभी भी कहीं हटते नहीं, हर क्षण हर जगह रहते हैं। देहाया में उनका यह भाव पुराने शीघार के रूप में भरे ही खिलाफ इस्तेमाल न किया जाये तो मैं तो कहना चाहूँगा कि वह कहानी बहुत कुछ आप-बीती सी है।) उसमें चीनस देव (कथा व्यक्ति की सामान्य प्रतिक्रिया हो सकती है : 'जानती हूँ, तुम किसी नियम, कानून या भौतिकी पर विश्वास नहीं करते। मैं तुम्हारा लॉजिक भी जानती हूँ। मगर देव बाव तुम अपने लॉजिक से अपने ही भागको बोला मत दो....' राजकमल उस केन्द्र से भटक गये जहाँ से उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा शुरू की थी। 'नदी बहती थी' की सम्भावनागामी शुरुआत के बाद और फिर यश-कदा 'भील' जैसी कहानियाँ मेरी बात को स्पष्ट करती हैं। लेकिन फिर-उन्होंने फ्रेंशन और शलत प्रभावों को शलत ढंग से जस्टीफाई करने वाले लॉजिक की तलाश करली और उसे गढ़कर वह छुड़ को छलते रहे। उनके दृष्टि में बहुत से अच्छे लेखन का कच्चा माल दबा पड़ा है लेकिन किसी भी धरातल पर उनकी कोई ऐसी उपलब्धि नहीं है जिसे गौरवपूर्ण मानकर और सतर्ही है, कलात्मक समय और अनुशासन का उनमें नितान्त अभाव है और दृष्टिहीनता से पैदा हुई मूल्य-भ्रष्टता की स्थिति उन्हें अर्थहीन चमत्कारों के जंगलों में भटका देती है। लेकिन फिर भी राजकमल के साहित्य का महत्व है क्योंकि वह शलत प्रभावों के तहत एक सम्भावनापूर्ण शुरुआत की असमय बढ़ जाता है जब हमें मालूम होता है कि उनकी अनितम ख्यातिजनता की धार आने की थी जिसे उन्होंने 'आलोचना' में प्रकाशित अपने वक्तव्य में स्पष्ट तौर पर प्रकट किया है।

१. देहाया—पृ० सं० ४३

२. वही—पृ० सं० ६१

१२४। राजकमल चौबरी के उपन्यास : मधुशे

लहर

मरी हुई मछली

परेरा

मैंने सम्भवतः '६१ में यह नियुक्ति लिया था कि निराला लेखकों का आदर्श नहीं हो सकता। तत्पर्य कलिदास, प्रसाद या आचार्य द्विवेदी की पवित्रता का निर्वाह राजकमल चौबरी नहीं कर सकता।

दोस्तोएव्स्की को थोड़ा भी पढ़ने वाला लेखक यह जान लेगा कि उसकी मुख्य उत्तेजना लेखन नहीं, ब्रूआ खेतना है। दाँव लगाने के मामले में वह पाण्डवों से एक करम भागे ही था। पिकातो को थोड़ा भी जानने वाला पाठक यह जानता है कि चित्र बनाना उसकी मुख्य विवशता नहीं, विवशता उसकी यह है कि 'बुल फाइटिंग' देखने के लिए वह अपने सब काम छोड़ देगा।

राजकमल और स्वयं अपने बारे में भी मैंने यही नियुक्ति लिया था कि ग्राम होते ही 'भी स्कूल' में दलाती करने से बढ़कर उत्तेजक बचा हम लोगों के लिए दूसरा नहीं हो सकता। खयाल कीजिये, यह नियुक्ति मात्र मेरा है, दोनों का सम्मिलित नहीं, यद्यपि राजकमल इस प्रकार का जीवन शुरू कर चुका था। इस उत्तेजना की आग नाभि के ऊपर और नीचे जलती है। ऊपर की आग का वयुंन करना उसने जरूरी नहीं समझा, इसके लिए वह नीचे से नीचे योजनारें बनाता, दोस्तों की जेब से पैसा निकालता ही उसकी दिनचर्या होती।

लिखने से कभी पैट नहीं भरता। कलकत्ते में वह यह जानता था कि वह नौकरी नहीं कर सकता। अतः लिखकर ना भरे हुए पैट के लिए वह हर तरह की योजनारें बनाता। व्यक्तिगत जीवन में वह ईमानदार नहीं था। इसका जस्टीफिकेशन हम लेखकीय भाषा में इस प्रकार देते हैं कि लेखक हर प्रकार के अनुभव के लिए क्षम्य है।

दिसम्बर-जनवरी '६८

१२५

लेकिन मैं इसे शक्य नहीं मानता। छपने की राजनीति में प्रवेश पाने के लिए जिस प्रकार राज का लेखक अपनी श्रोत की भावों को कानूने के बाजू में खोड़कर अपने गांव-घर में वापस आ गया।

परिवार के साथ रहने के बाद यह लगा कि उसके साहित्य की जानना मेरे अपने कमखोर प्रतिष्ठित को ढकने के लिए भोड़ रहा है। उसका 'सच' उसका मन्दिर जाने वाली एक सती साध्वी, उगते हुए सूरज के बराबर भांये पर बिदिया सारी चित्ताओं को हवा में उछाल देने वाली छः मास की दिव्या। मैं कि हम 'आपानक' का आरम्भ उसको 'पिताये' बिना नहीं करते। भाषी सम्भवतः इसी सुख के लिए मैं अधिकांश समय कलकत्ते के सुदूर दक्षिण के उस पूर्व पुतिपारी में बिताता।

याद करने पर यह सब औपचारिक लगता है। द्राम या बस में बैठकर टाली-गज जाना, पश्चात पंदल पुल पार कर पुतिपारी। यह बीच की नदी ही, 'नदी बहती थी' थी। नदी किनारे का वह पेड़ भी उसने दिखाया, जिससे लटककर इस उन्मास की एक श्रोत श्रान्तमहत्मा करती है।

२२ जून '६७ को ४० और ६० बरस के मेरे दो मित्रों ने एक पार्टी श्रारंज की। पता चला, वे मेरी शादी की दूसरी वर्षगांठ मना रहे थे। मई में बक्षी तो आ कर डिनर पर आना था। मैं इन लोगों को लेने तोचने गया तो विमल ने कहा: 'तुम बहुत ना हे जाग्रो तो तुम्हें एक खबर सुनाऊँ' मैंने समझा हमेशा की तरह कमल नहीं रहा। मैं बहुत नहीं हुआ—यह दिखाने के लिए मैंने चेहरा कड़ा किया और बिना कुछ कहे तेजी से नीचे सोई की ढ़कान पर चला गया।

डॉ० मदान जब तक आये—हय लोग बीयर की बोतलों को खाली कर साधुओं की तरह बैठे थे। लेकिन मेरे मित्र ने बताया, बीयर के दौरान मैं राजकमल के बारे में ही बोलता रहा था। डॉ० मदान के आने के बाद भी मेरा टेन्शन कम नहीं हुआ था।

१२६। मरी हुई मछली : परेण

लहर

राजकमल की दो मुख्य काव्य-कृतियों पर पिछले दिनों 'विनेचना' में एक पत्र पर 'पड़ा गया है, वह मैंने भी पढ़ा। उसकी श्रृंगार के बीर विहार, बनारस और मध्य-प्रदेश से इनके इनके टुकड़ों में भी आते रहे। मैं बड़ी निमित्तला से इस डाक को बेचने वाले कानवों में खजता गया..... क्या होगा पढ़ने के बाद राज संज्ञोने से.... यह राज बाद भी नहीं बनेगी।

पिछले दिनों 'आनोदय' में कुछ लिखने के लिए मैंने 'होमोर्ब' पर काफ़ी पढ़ा। लिखा भी, मगर रमेश बशी डर गया। उसने लिखा: वह इस लेख को लेकर दिल्ली आ रहा है तथा किसी अन्य पत्रिका में इसे छापेगा। अपनी 'लहर' में 'कुण्डा' पर उसकी टिप्पणी पढ़ी और थोड़ा विचाराव आया कि हाँ, वह छाप सकेगा। लेकिन उस लेख में तो इतने तमाचे हैं—कहानियों में छायावाद लाने वाली संकली पीढ़ी पर कि ये 'प्रेमराज प्रेतों' के नारे लगाने वाले लोग मागों और पीछे मुड़कर भी नहीं देखेंगे। फिलहाल इस पीढ़ी की गोटी, टाइम्स आफ इण्डिया की गह पर बड़ रही है, लेकिन उसके मिटने में देर नहीं है।

कम से कम राजकमल इन्हीं समभौतापरस्त राजनीतियों से जूझते-झुझते मरा है। ४-१० ऐसे ही स्वर बुलन्द हो जाएँ तो पाठक इन लोगों के पुनर् जलाने में देर नहीं करेगा, हिन्दी पाठक को गुमराह करने का आग्रह इनके सेहरे पर बंधा हुआ है।

इनकी-इनकी कहानियों और इन काव्य-चर्चाओं के बाद मुझे मिली: 'मछली मरी हुई'। 'लेबियनस' के बारे में वह काफ़ी जानता है, यह सिद्ध करने के लिए उसने भूमिका में ४-१० पुस्तकों के नाम गिनाने हैं। यदि उसने ये पुस्तकें सच-मुच भी पढ़ी हैं, तो भी उसके इस ज्ञान का उसके इस उन्मास से कोई सम्बन्ध नहीं। एक बार जहाँ उसने शीरी पद्यावत और प्रिया को सम्भोग-रत दिखाया है, वहाँ भी किसी प्रकार की उत्तेजना पुरुष-पाठक में नहीं जगती। सब प्रकार के सम्भोग-जन्य भक्तिकमण के बावजूद उन्मास किसी भी प्रकार 'लेबियनस' को केन्द्रीय समस्या बनाकर नहीं चलता। केन्द्रीय क्या, स्त्रियों की यह समन्वित रति कहीं शार्संगिक समस्या भी नहीं है। यह मात्र उसने भूमिका में बड़प्पन दिखाना चाहा है।

'लहर' सम्पादक का मेरे पास पत्र आया तो वर्षों बाद मैंने कोई टिप्पणी लिखने की हामी मरी। वह इसलिए कि राजकमल का प्रसली गुरु ज्यो जेने (Jehan Jene) हो सकता था। काश। उसने जेने की The Thief's Journal पढ़ी होती..... वह जान सकता कि पुरुषों की सार्वजनिक रति (आवश्यक रूप से मात्र

दिसम्बर-जनवरी '६८

१२७

इच्छा नहीं, बल्कि पति पत्नी के से सम्बन्ध) की दुनिया मिलनी बड़ी है ?
 वैसे इस दुनिया के बारे में हिन्दुस्तान का छोटे से छोटा कच्चा भी और छोटे
 से छोटा लश्कर भी जानता है, लेकिन जितना ज्यादा जाने जानता है, वह लग-
 'बलिब होमो' का है। अपने 'एक्टिव होमो' (पति) के कार्यों के बारे में
 जितना शौच्यार्थिक दृष्टि से जेने ने बर्णन किया है अन्य 'फ्रीमेल व्होर्स' (मादा-
 और लड़कियाँ नायिकाओं में भी नहीं मिलती, जब कि वे नायिकाएं 'श्रीरत्न' थीं,
 और जेने 'स्टीलिनियो' की 'नर-पत्नी'।

कमल के बारे में कुछ ऐसी सूचनाएं दे सकता था उन्हें, जो यह मानते हैं कि
 राजकमल का भी कोई साहित्य है।

मुझे तो इस उपन्यास के बारे में इतना ही याद है कि जीवन भर नपुंसक रहा
 एक व्यक्ति, जो एक राल न्यूयार्क के संगीता होटल में अपनी प्रेमिका से सम्बन्ध
 नहीं कर सका था, बीस वर्ष बाद कलकत्ते के 'कल्याणी-मेन्शन' में उसी
 को श्रद्धांश-वर्षाया पुत्री से एक ही रात में अनेक बार बलात्कार करता है।

बलात्कार करवाने से पहले यह लड़की उन्नीसवीं मंजिल में रहने वाली उस
 आदमी की पत्नी की काम-वासना पूरी करती है। औरत से सम्बन्ध करवाने
 के बाद यह लड़की मात्र उसके पति के इशारे पर तीसवीं मंजिल पर चली
 जाती है—जहाँ रम पिता कर वह अनेक बार उसे खून से लथपथ करता है।

अपनी जवानी में नपुंसक रहे इस आदमी में कुछ ऐसा है यह पुंसत्व कहाँ से आ
 गया ?....बार बार कुचली जाती हुई यह मछली हर बलात्कार और खून के
 फोवारे के बाद कहती है : 'और करो, मैं अभी मरी नहीं....' साथ में उल्टियाँ
 करती जाती है। यह मृतभ्रातृ लड़की आधी रात पर जैसे जैसे उठकर सीढ़ियों से
 उतरकर आना चाहती है, तो चक्कर खाकर गिर पड़ती है। नौकर उठकर उसके
 घर पहुँचा आते हैं। जहाँ उसका डायटर पिता बिना किसी उत्तेजना के अपने
 हाथों से उसके भाव पौष्टता है और सातवें दिन आरामदत्ता कर लेता है।

मरने से पहले एक पत्र में लिखता है : 'मुझे पता था तुम ऐसा करोगे' और
 यह जानने वाला पढ़ा-लिखा पिता फिर भी उसे उस बलात्कार-गृह में जाने
 की छूट देता रहता है। उसे यह भी पता है कि उसकी लड़की एक औरत की
 काम-वासना का शिकार या साधन बनती है हर रोज़। अतः ऐसी लड़की को
 पुरुष के संसर्ग का स्वाद जानने के लिए वह अक्सर देता था : 'जिससे कि तुम
 एक दिन उसे अपने फ्लैट में ले जाओ....'

१२८। मरी हुई मछली : परेश

लहर

...इतनी विविधता भरना करने वाले लेखक के बारे में क्या कहें....अब
 कहना बाकि है कि उसकी इरादना की Jean Jemel की The Thief's
 Journal पढ़वाई जाय। वह कोई दूसरा उदाहरण लिखता, उन दुनिया
 से भी....

इस उपन्यास के अन्त में मैंने पसल से लिख रखा है : A Crime novel.
 अपने अन्त के गुरु में जहाँ जेने लिखता है : as one arranges a Coach
 or a room for love, I was hot for crimes.

....and Raj Kamal was also hot for crimes....he could have
 been another Jemel. ● ●

लिखाई व छपाई का

उत्तम
 उत्तम
 उत्तम

कागज

लार-विदला

फोन : ४४, ४५, ४६

सिरपुर पेपर मिलस लि०

(मीनिंग एजेंड्स-विदला बरसं प्रा० लि०)

सिरपुर कागजनागर

प्राध-प्रदेश, दक्षिण मध्य रेलवे

दिसम्बर-जनवरी '६८

१२६

मछली मरी हुई

विश्वभरनाथ उपाध्याय

श्री राजकमल चौधरी के इस उपन्यास पर तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ सुनता रहा हूँ। अभी यहाँ श्री धर्मलाल नागर आये थे। 'सेक्स और उपन्यास' पर चर्चा हुई। नागर जी की राय है कि हिन्दी में 'सेक्स' का सम्भार के रूप में चित्रण-विश्लेषण नहीं के बराबर हुआ है। 'मछली मरी हुई' के विषय में भी कोई ऊँची धारणा नागरजी के मन में नहीं बनी।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के 'रूपजीवा' में एक नपुंसक का नकशा पेश किया गया है और उसके 'कलंक' का भ्रसर उसकी पत्नी पर किस तरह होता है, इसका मानस-विश्लेषण वहाँ किया गया है। तब उसकी प्रशंसा भी हुई थी। सेक्स को समस्या के रूप में डी० एच० लारेन्स ने प्रस्तुत किया था। लारेन्स के सम्मुख एक भ्रातृमी की शारीरिक असमर्थता का सवाल नहीं था। उसके सामने उस घनी, लेकिन मोतर से 'निर्जीव' वर्ग का सवाल था, जिसका प्रति-निधि मिस्टर चैटर्ली है; सम्मान, धन, खिताब, लेकिन अवाहिज और शुष्क! समस्या के विषय और विवेकहीन विकास में एक बह मंजिल आती है, जब भ्रातृमी सहज या प्राकृतिक स्तर पर अपने को 'असमर्थ' महसूस करता है और इस 'विसंगति' को उभारने का एकमात्र यही तरीका था कि लारेन्स 'गेमकीपर' को गरीब लेकिन 'सहज' जीवन-विधि के प्रतीक रूप में पेश करता और सम्भोग-क्रिया का ऐसा कलात्मक वर्णन करता कि चैटर्ली की जमात

के लोग अपने 'लाव' को समझने की कोशिश करें, अपना, अपनी 'गोमाइटी' का कल्याण करें।

'मछली मरी हुई' में एक यौन-विकृति को प्रकुल रूप में लिखा गया है। लेकिन लारेन्स की तरह यहाँ भी वर्तमान 'प्रयुक्त' लेखक के ध्यान में है। यह देखने योग्य विन्दु है कि इस रचना में न तो 'सामूहिक' प्रितन' के प्रति प्राकट्य उल्लाप किया गया है और न उस धर्मयुक्त समाज की भुलाया गया है, जो मानसिक विकृति में मददगार सार्वित होता है।

राजकमल चौधरी 'मछली मरी हुई' में किसी विषय की सत्ता नहीं मानते, केवल विषय को, उनके मत से, यहाँ 'प्रस्तावित' किया गया है। गहराई में उतर, शायद इसीलिए, लेखक कल्याणी, गीरी, प्रिया और निर्मल के मन का पूरा चित्रण पेश नहीं करता। ऐसा लगता है, जैसे सिर्फ महिलाओं की भावसी नुहलत के 'कथन' को ही वह एक 'आत्मिकारी' काम समझता हो और शायद इसीलिए उसके मन में प्राया हो कि हिन्दी के लिए इतना भी बहुत है। हिन्दी में अभी तक ऐसे विषयों पर लेखन एक 'साहस' और 'प्रायुनिकता' का कार्य माना जाता है। क्योंकि हमारा समाज 'विकृति' को छिपाता है, और सतह पर साधु जीवन की प्रतीति देता है। अतः ऐसे भाइयारूपों समूह के सम्मुख 'मछली मरी हुई' जैसे कृति निश्चित रूप से 'साहस' का कार्य ही कहा जाएगा। लेकिन व्यापक दृष्टि डालने पर इस रचना में कुछ भी 'साहस' नहीं दिखता। पड़ता। क्योंकि 'विकृति' के वर्णन के समय चौधरी के मन में कोई 'नैतिक' प्रतिक, एक सीमा तक अवश्य रहा है। न अन्यथा सिर्फ वेचनी और रोग के रूप में चित्रण न होकर, 'प्राकृतिक' चित्रण होत।

'बड़ी बहन' ने तरीका बताया। अपने बनाये तरीके पर आगे बढ़ती गयी। शरीर प्रायःचर्चित थी। वह बेहद उत्तेजित थी। बहन जो करना चाहती थी, करने देती थी। तनिक भी इन्कार नहीं, जरा भी एतराज नहीं। कोई 'गुरु' शरीर को इतनी शीतलता, इतनी शीतल उत्तेजना, इतनी उत्तेजक शारीरिक वेदना नहीं दे सकता था। नहीं दे सका था।

साफ है कि चौधरी के मन में कोई 'बेक' है। इसलिए अन्यत्र वह 'प्रतीकाल्मक' 'बली' प्रयत्नाता है: 'एक मछली कहती है, और पास आओ, अपने हीतों से मुझे पी जाओ। मेरे हीतों में जोश डाल दो। अपने शरीर से मुझे रगड़ती रहो। मैं मर रही हूँ।'

निर्मल जब प्रथम बार कल्याणी के साथ असफल होता है, वहाँ लेखक निर्मल के मन की तबीयत पेश नहीं करता और 'उपन्यास' में कमचौरी का कारण यही है। क्योंकि इस रचना में न केवल सेक्स एक 'समस्या' के रूप में लिया

गया, बल्कि भ्रन्त में 'समाधान' भी प्रस्तुत किया गया है। भ्रन्त में निर्मल 'प्रिया' से बलात्कार करने में कामयाब हो जाता है और भ्रपने पुण्यत्व को पा जाता है। जिसका जिक्र डा० रघुवराम भ्रपने पत्र में करते हैं, लेकिन रचना बनने के लिए आवश्यक था कि केवल 'पुण्ड्र' का संकेत न हो। कंसे प्राप्तमान पर बादल भाते हैं: एक पर एक, दवा से कैसे कैसे रूप बनते हैं और खिन्नी के पहिये को कैसे किबर घुमा देते हैं? इस भीतरी खोज-खबर का स्वयं भाव होने से 'मछली मरी हुई', कामशास्त्र के एक अध्याय-सी लगने लगती है, जिसमें 'नेस्विग' को सिर्फ कहानी में बांध दिया गया है। विवरण-प्रियाता इतनी अधिक कि कहानी के बीच बीच 'लेखिका' पर जानकारी घोषित की जाने लगती है, जिससे 'विश्वसनीयता' भ्राती प्रचण्ड है, लेकिन वह 'भौग्यासिक विश्वसनीयता' न होकर, 'शास्त्रीय विश्वसनीयता' बन जाती है:

१७६० ई० में मार्क्विज-दि-मोदे के दो उपन्यास 'ज़ूलिएट' और 'जस्टीन' प्रकाशित हुए। दोनों में ही स्त्रियों के 'सामाजिक प्रेमकाण्डों' का विस्तृत विवरण किया गया..... (पृष्ठ १३२)

'इसलिए 'मछली मरी हुई' में 'विषय का प्रस्ताव' भाव हो प्रस्तुत हो पाया है; 'ओम' सुगुणा कर रह गई; सचित्र और सवाक् नहीं हो पाई।

कहानी के बीच बीच 'टिप्पणी' देने का जोय क्यों हो? राजकमल चौधरी की आधुनिकता बनावटी नहीं थी। उसमें परिप्रेक्ष्य था। वह वास्तविकता की भ्रमभंगि को बड़े तीखेपन से महसूस करते थे। यह 'तेजाब' उनके प्रत्येक क्षण का साथी था, लेकिन उसे पीले-पीले वह तेजाब जैसे वह, उनके छून में समा गया था। इसीलिए 'भ्रह्मास' में गहराई प्रचण्ड है; 'चित्रण' में नहीं है। भ्रह्मास की इस गहराई से तेजक ने निर्मल पद्मावत का व्यक्तित्व गढ़ा है, जिसमें 'माउण्ट क्रिस्टो' (ज्यूमाख) की रहस्यमयता, रोमांच, वर्णरह समी है, लेकिन 'माउण्ट क्रिस्टो' के नायक में जो नहीं है, वह है, निर्मल की बीसवीं शताब्दी में उपस्थिति; उन सेठों के मध्य जो 'नये' नहीं हैं; जो भ्रव 'भी' भायुकर छिपते हैं और 'नये' उद्योगों में पूंजी नहीं लगाना चाहते। जो 'समर्थ' का उपयोग सिर्फ 'षडयन्त्र' में करते हैं।

निर्मल पद्मावत को एक 'व्यक्तित्व' देने में लेखक सफल हुआ है (रहस्यमयता भरने के वाच्यवाद)। जैसे समकालीन सेठों के सामने राजकमल चौधरी स्वयं निर्मल पद्मावत के रूप में खड़े हो गये हों और ('प्रयास' में न सही; 'कलना' में ही सही) 'प्रबुद्ध पूंजीपति' द्वारा 'पिछड़े हुए पूंजीवाद' को

नीचा दिला रहे हों, लेकिन भ्रन्त में निर्मल उन मन्त्राई की पहचान लेता है कि वह कुछ नहीं कर सका। 'कल्याणी मेजान' भी वह तभी बच सका, जब उसे वही पुराने हथकण्डे भ्रपनाने पड़े। यही उपन्यास 'लेखिका' की पीछे छोड़कर, समकालीन 'भ्रमंचक' की कहानी बन जाता है और 'लेखिका' उसी की एक 'विकृति' के रूप में दिखाई पड़ने लगता है। 'विकृति' की 'परिप्रेक्ष्य' मिल जाता है और दरभस्त यही सबब है कि 'मछली मरी हुई' का भ्रसर पूर्ण सपाट न रहकर, कुछ संकुल हो जाता है।

'सैक्स' और 'भ्रमंचक' के विषय में राजकमल चौधरी की 'प्रामाणिक भ्रनुभव' हुए थे। वह इस कुठित मुल्क के सामने बस्तुतः 'विद्वान' संकस-विकृति को रखता चाहते थे और इस क्षेत्र में परम्परागत झाडम्बर को तोड़ना चाहते थे। दूसरी तरफ 'भ्रम' के दुष्चक्र के भी वह विरोधी थे। नतीजा यह हुआ कि 'सैक्स' पर लिखते समय वह 'भ्रमंचक' के विषय में टिप्पणी करना नहीं मूलते और 'भ्रमंचक' की चुनीली स्वीकार करने वाले निर्मल को ही वह नपुंसकता से प्रस्तुत दिखाते हैं। और कोई उपाय यदि था तो यह कि वह निर्मल को इतना रहस्यमय बनाने से बाज आ सकते। वे लेकिन वह लेखक की निर्मिति का मुख्य बिन्दु नहीं है; मुख्य बिन्दु यह है कि भ्रमंचक के कहों भीतर रखकर ही, 'सैक्स' की समस्या को देखा जा सकता है।

भ्रन्त: 'रचना-प्रक्रिया' के विश्लेषण में इस शब्द को 'व्यापक' भ्रम में लेना चाहिए। कुछ 'प्रतिगामी आधुनिक' 'वास्तविकता बोध' को कला में उतना महत्वपूर्ण नहीं मानना चाहते। लेकिन 'मछली मरी हुई' से भी यह साबित हो जाता है कि 'वास्तविकता बोध' (काननीयन भ्रॉक रियलिटी) रचना-प्रक्रिया के स्वल्प को निश्चित कर देती है। जेम्स ज्वाइस 'आधुनिक उपन्यास' के प्रवर्तकों में माने जाते हैं। जेम्स ज्वाइस ने दास्तावत्की को बड़ा उपन्यासकार इसलिए नहीं माना था कि वह एक गल्पकार था, भूरे किस्से गढ़ता था। जब कि जेम्स ज्वाइस डबलिन शहर की रोजमर्रा की खिन्नी का नरशा देना चाहते थे और इस 'बोध' ने ही 'यूनिक्स' की 'रचना-प्रक्रिया' का स्वल्प तय कर दिया था। 'मछली मरी हुई' में लेखक एक 'वास्तविकता' को एक बड़ी वास्तविकता के चित्रफलक पर भक्षित करता है। उसमें 'समस्या' और 'परिप्रेक्ष्य' का प्रभाव नहीं; कभी यही है कि वह 'समस्या' का तलसर्षो भ्रंजन नहीं कर करता। वह 'प्रस्तावना' से भ्रगो बढ़ कर विकृतिमय मानव-चेतना के विविध 'वर्तन' नहीं उभार पाता; इसलिए वास्तविकता का तीखा बोध और भ्रमेशाकृत अधिक 'साहस' भी उच्च कोटि की 'रचना' में बदल नहीं सका।

एषलिए राजकमल चौखरी के इस उपन्यास का स्थान और महत्त्व यह है कि वह हिन्दी में एक नये क्षेत्र प्रथमा वास्तविकता के एक नये प्रापाम की ओर लेसको-पाठकों का ध्यान प्रकाशित करता है; और उस साहस और प्रुलेपन 'उपन्यास' की दृष्टि से 'मछली मरी हुई' प्रथम कोटि की रचना ही है। यदि राजकमल की ओर जितना रहने का मौका मिलता, तो शायद वह अपने 'प्रापामिक' और 'भुल भनुभवों' को किसी थ्रोड 'रचना' में स्वात्तरित कर पाते। फिर भी 'पायोनियर' कभी विरुद्ध नहीं किये जा सकते। ••



इन्हें बचत करना और भविष्य बनाना सिखाइये
 आज ये बेफिक्र है, लेकिन कल की कौन जाने ? इन्हें भ्रान्ति का सोचना सिखाईये। भविष्य के लिए बचाने का प्रथम है स्टेट बैंक में बचत करना।

बेहतरीन सेवा के लिए स्टेट बैंक

१३४। मछली मरी हुई : विश्वभरनाथ उपाध्याय

सहर

सामयिक विकृत्यात्मक अभिव्यक्ति : प्रायोगिक असफलता

भारतरत्न भार्गव

‘राजकमल के शिल्प में बड़ी ताजगी है। साधारण से जट्यों को मुहाविरों की तरह प्रयोग करना वह खूब जानता है। उसकी गैली प्रपनी है। वह उसकी सबसे बड़ी विशेषता है, विग्रह्यता है।’ या :

‘उसके लेखन में बेहद विस्तराव है।’ और :

‘प्रपनी गद्य में, कहानी या निबन्ध में, उपन्यास में या टिप्पणी में, बड़े-बड़े लेखकों, पुस्तकों, कलाकारों, प्रवेगी क्रिस्मों, स्थानों, या (और) संदर्भों का सामंजस्य बिन्न करना उसकी श्रावत है। वह डेर सारी बातों और विचारों के बीच पाठक को उलझा कर चमकृत करता है।’ और ये, कि :

‘उसने प्रपनी श्रास-पास से, परिचित वातावरण से, प्रनुभूत सत्तों से, सामुनिक संदर्भों से मात्र प्रपलीलता को चुना है। उसी में उसका मन रमता है। उसका शैलिक आन्तरिक निजता से आन्तरील प्रसंगों को जोता है।’ और ये भी कि :

वह प्रत्तिविरोधों से प्रुभला हुआ व्यक्तित्व या, जो प्रपनी आत्मा (या आन्तरिक निजता) से पराजित हो कर टूट गया।’

ये और इस तरह की आन्तरीक बातें समय-समय पर राजकमल के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में कही जाती रही हैं। जब तक राजकमल जीवित रहा, वह यह सब कुछ सुनता रहा। बातों के, किस्सों के, प्रवेगों के और भक्कारी के जाल बुन-बुन कर लोगों को मोड़ पर फँकता रहा। लोग जाल में उलझते रहे और राजकमल मजा लेता रहा।

दिसम्बर-जनवरी ६८

१३५

इस भीड़ से वह पूरी तरह घासपुसत या तटस्थ रह पाया हो, ऐसी बात नहीं है। हर स्थिति में, हर अनुभव-यात्रा में, हर नये सदस्य में, वह बहुत अधिक जुड़ा हुआ, बल्कि 'इन्वोल्व्ड' रहा है। सम्पुष्टि का यह चरण उसे जीवन भर भटकाता रहा। यही भटकन, यही पीड़ा, यही दर्द उसके उपन्यासों में मुखरित है। प्रमुखियों की प्रामाणिकता और सत्यता की प्रासंगिकता के कारण ही उसका शिल्प ताजा नजर आता है। अनेक विरोधी स्थितियों का यह इन्वोल्वमेंट उसके विवरण का कारण है। वह प्रतिक्षण कुछ नये की तलाश में संलग्न नजर आता है। यह 'नया' उसे इतना चकित करता है कि वह झटपट ही झटपट उससे अलंकिता हो जाता है। यह अतक उसके दिलो-दिमाग पर इस करार हावी है कि छुटकारा पाना चाहकर भी वह उससे मुक्त नहीं हो पाता। सम्पुष्टि और विमुक्ति के बीच ही इस छटपटहट के कारण वह अपने को बहलाने, बल्कि बहकाने के लिए बहाने ढूंढता है। ये बहाने उसके किस्सों का जाल हैं और इन बहानों की कलात्मक अभिव्यक्ति है : 'उसका साहित्य'।

राजकमल ने हिन्दी के कुल चार उपन्यास लिखे : 'नदी बहती थी', 'शहर था शहर नहीं था', 'मछली मरी हुई' और 'देह गाथा'। एक अन्तर : एक बीमार उसकी लम्बी कहानी है, और इसके अतिरिक्त उसका एक अधूरा लघु उपन्यास भी है : 'आरम्भक'।

कलकत्ता की एक कहानी पत्रिका में 'नदी बहती थी' वार्षाधिक रूप से भी प्रकाशित हो चुका है। और यह उसका प्रथम उपन्यास है। 'नदी बहती थी' के परिदेश में नजर आने वाले पात्रों : सोमेश, विमल ठाकुर, सोनाली, रनजीत, शेफाली आदि में, और उसके बाद के उपन्यासों : 'मछली मरी हुई' और 'शहर था शहर नहीं था' के पात्रों में बहुत अन्तर है। अन्तर देश और काल का नहीं, यह बहुत मानों में परिस्थिति का अन्तर भी इतना नहीं है, जितना नजरिये का है। यह नजरिया कितनी तेजी से बदलता है, इसके साथ ही उसके ये सभी उपन्यास, और यदा-कदा डायरी में व्याप्त हुई मनोदशाएँ।

'नदी बहती थी'—कहा जा सकता है कि अपेक्षाकृत सुधरा उपन्यास है। 'सुधरा' इस माने में कि इस उपन्यास में वह बहुत संयत नजर आता है। कलकत्ता की एक छोटी-सी बस्ती की केन्द्र बना कर लिखा गया अतः उपन्यास सामाजिक विवरण, राजनैतिक घडघन्यों और वैयक्तिक सन्नास की बखूबी समेट कर चलता है। इस उपन्यास में राजकमल स्थितियों पर करारा व्यंग्य करता है, उन्हें यथावत् स्वीकारता नहीं। उसका आकांक्षित तेज छुरी की तरह प्रत्यक्ष की तराजता हुआ आवर्तित सत्यों की उद्घाटित करता है और उसे

अंग करते उस पर व्यंग्य से मृदुरता है। सोमेश गांगुली की राजनीति में, विमल ठाकुर की बौद्धिकता में, रनजीत की एकाग्रिक (या स्यायंपरक) वैयक्तिकता में, शेफाली की नैयत्यति में, पूर्वा की आन्तराणी में कहीं भी राजकमल प्रसरपुसत नहीं है। वह हर पात्र और चरित्र के अन्तर से आँकता हुआ-सा चलता है। पात्रों की कम्पोजिटिवि उनको विवशता भी है : यह 'नदी बहती थी' का लेखक खूब समझता है। इसीलिए उसका हर चरित्र कमजोर होकर भी पूर्ण है। वह कम्पोजीटिवि यथायं परक है और यह पूर्णता इष्टिपरक ! राजकमल के लेखन की, उसके उपन्यासों की एक विशेषता है (विशिष्टता यत्ने ही न हो।) कि वह हाईवे पर नहीं चलता। छोटी-छोटी गलतियों, मोड़ों पर रुकता हुआ, उनके बारे में सोचना-समझना चलता है। उसके दिमाग में अनेक विचार हैं और अनेकानेक समस्याएँ हैं। वह उनसे मुक्त नहीं हो पाता और उनमें उलझता है, फिर उन्हें शब्दों से तराज कर आगे बढ़ जाता है। यही उसका व्यंग्य पूरे तीक्ष्ण पर उमरता है।

खाद्य आन्दोलन के सिलसिले में जनता पर गोलियाँ चली हैं। लेखक मान इस घटना और इससे प्रभावित पात्रों की ही क्पेष्ट नहीं करता, सारे देश की राजनैतिक स्थिति उसका केंवास बढ़ा कर देती है। वह इस घटना के माध्यम से सारे देश की जनता, राजनैतिक दलों और उनकी नीति-नीति के कारण उत्पन्न विद्रूप को अपने शब्दों में समेट लेता है :

'हर देश की हर राजनैतिक पार्टी यही चाहती है। जन-सामान्य का फायदा नहीं चाहती है। चाहती है पार्टी का फायदा। पहले पार्टी, पहले पार्टी का हित, पहले पार्टी के उसूल, बाकी सारा कुछ बाद में ! जनता का फायदा तो कोई नहीं चाहता !.....' राजनैतिक पार्टियाँ अनाज पैदा करने का आन्दोलन नहीं करती हैं। इस आन्दोलन का उन्हें पता तक नहीं होता है। उनके लिए आन्दोलन का यानी होता है खिलाफत और बग़ावत। सिर्फ खिलाफत, और नारे और जुलूस और निहत्थी जनता को पुलिस के हथियारों के सामने खड़ा कर देना !' (नदी बहती थी : पृष्ठ ११७)

लेकिन उसके दिमाग में विचारों और समस्याओं का यह जमघट उसे कई बार जरूरत से ज्यादा भटकता देता है। कुछ स्थानों पर वह समझ जाता है किन्तु अधिकशतः उसे यह भटकान बुरी तरह उलझा देता है। यह उलझन पाठक के मन में कई बार खीझ भी पैदा कर देती है। उसके केंवास के विराटत्व में मूल बिन्दु लुप्त-सा हो जाता है। 'आरम्भक' (लहर, नवम्बर '६१ : दूसरी किस्त) में इस बड़े केंवास पर विचारों की उलझी-झपाई कोई स्पष्ट आकृति नहीं

बना पाती। प्रथम पुरुष में लिखे गए इस अधूरे तबु उपन्यास में उपरान्त प्रथम विशिष्ट शैली और जिल्द के बावजूद कभी-कभी विकर्षण गर देता है। उसका स्वरूप निवन्धारमक हो जाता है। यथा

‘नीलू का नाम झोते ही, जैसे मैं दूसरा झारमी हो जाता हूँ। वह नहीं रह पाता हूँ जो मुझे होना चाहिए। मगर, सवाल उठता है, क्या होना चाहिए ? किसी भी झारमी को क्या होना चाहिए ? ऐसा पति होना चाहिए, जो...’ और लेखक, झारमी को विभिन्न स्थितियाँ—पति, पिता, नौकर, और नागरिक के रूप में—पेश करता हुआ उन पर करारा व्यंग्य करता है। फिर अपने झोतेत में खो जाता है। झोतेत की स्मृति से लौट कर सिद्धान्तों और फलसफे में डूब जाता है। उसके बाद सारे सिद्धान्तों की व्यर्थता सिद्ध करते हुए यार्निक जीवन की विषमताओं और विचित्रताओं के जाल फैलाकर दिखलाता है और फिर फेहरिस्त और फेहरिस्त। ‘दवाएँ, शराब, प्रक्रोम, कपड़े, फ्रैगम, नाच-गाने, जलसे, शिकार, खेल, लैंकमार्केट, कानून, जेलखाने, बेयर बाजार, नष्टियाँ !’ [फिर जैसी कि उसकी झारत है कि जब तक झोतों की जाँचों और टखनों की बात न करे, उसे चैन नहीं पड़ता] और, ‘कपड़े उतार कर बिस्तरों में दोनों टांगें झलगा-झलगा फैलाती हुई खिलखिलाने वाली झोरतों !’ यादि-यादि-यादि !

झोरत राजकमल की सबसे बड़ी कमजोरी रही है। व्यक्तिगत जीवन में भी झोरत साहित्य में भी ! साहित्य में तो होर, नजर झारता ही है, व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में इसलिए कह सकता हूँ कि मैंने कलकत्ता में उसके साथ कुछ बरत गुजारा है। कलकत्ता के बड़े बाजार की वैश्याओं, आउट्रम पाट की बटर-मिजान और वेडोल झोरतों के साथ झोर चोरंगी के आधुनिक शराबखानों में उसके साथ कुछ बरत गुजारा है। उसे नजदीक से देखने-पढ़ने की बार-बार, किन्तु असफल कोशिश की है। इसलिए जानता हूँ और कह सकता हूँ कि झोरत उसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी। झोरत को झलगा करके वह दुनिया की कोई-कौन नहीं देख पाता। बाद के लेखन में तो यह स्वर और तीव्र हो गया है। ‘एक झनार : एक बीमार’ की सीता, ‘नदी बहती थी’ की पूरबी, ‘मछली मरी हुई’ की श्रीरी, उसके इस कमजोर खयाल से खेलते हुए पात्र हैं। झनारी कमजोरी से पाठकों को चमकृत करने के लिए उसने साहित्यिकता का नारा देकर यौन-विकृति, वंचना, शुद्धता, दुष्ण, तिरस्कर स्थितियों का गूँथन किया है और इसे इसी रूप में स्वीकार न करने वाले लोगों को ‘पुलिस मनोवृत्ति’ का घोषित करके ‘सब लिखने के खतरे वर्दाश करने वाली बात कही है : [‘एक झनार : एक बीमार’ की भूमिका]।

फिर भी, यह सब है कि यौन-विकृति का बिमल हो उसके लिए साध्य नहीं था। सामाजिक विद्वत्ताओं का जड़नीला दुर्घा पीकर उसने पूरे पचाया नहीं, पचा नहीं सका, यूँही जगल दिया है। जगला हुआ दुर्घा यौन-मस्तिष्क में दुर्गन्ध भर देता है; किन्तु वह काल्पनिक या मात्र मानसिक नहीं है, यथार्थ है। यह बात दूसरी है कि वह दैहिक यथार्थ की बोधमत्ता में आन्तरिक यथार्थ को इतनी तीव्रता से नहीं पकड़ सका।

‘देहाघा’ में देवकान्त (यानी कि वंश स्वयं) के मुख में कहलवाता भी है : ‘मैं जानता हूँ कि मैं किसी भी झोरत को प्यार नहीं कर सकता। कि झोरतों मेरे लिए माध्यम मात्र हैं, उद्देश्य नहीं हैं, और साधन की सिद्धि समझने की प्रतीति मैं नहीं करता हूँ।’

(पृष्ठ ७७)

सारे बातवचन में, सारी स्थितियों में, सारी घटनाओं में वह ‘झोरत’ से प्रार्थकित रहा है। उसे हर जगह झोरतों, लटके हुए स्तन और खुली हुई जंघाओं वाली झोरतों की सीढ़ नजर आती है। ‘.....और, हर शहर में झोरतें अधिक हैं। और झोरतों के कारण शहरों से, और शहरों के कारण झोरतों से और शहरों से भागता रहता हूँ और भागता रहूँगा।’

(देहाघा : पृष्ठ ७८)

‘देहाघा’ देवकान्त की कथा नहीं, (कमोवेश) राजकमल की ही अनुभव-यात्रा है। इसे उसने स्वीकारा भी है : ‘यदि इसे उपन्यास की सफलता का पैमाना मानकर मेरे ही खिताब इस्तेमाल न किया जाय, तो मैं कहना चाहूँगा कि वह कहानी बहुत कुछ आधुनिक-सी ही है।’ लेकिन फिर भी उसने इस उपन्यास की भूमिका में व्यर्थ ही यह सफाई भी दी : ‘किसी भी दाय में यह उपन्यास लेखक की व्यक्तिगत और ‘अनुभूत’ कथा-भूमि नहीं है।’ यह शायद इसलिए कि बहुत सारी कदमोरियों, जो इस उपन्यास में चित्रित हैं, स्वीकारते वह डरता रहा। पावंती के रूप में श्रीमती सावित्री, उसकी प्रेमिका (या पत्नी ?) शक्ति के रूप में श्रीमती शक्तिरत्ना चौधरी, उसकी पत्नी; और देवकान्त के रूप में वह स्वयं ही रहा है। ‘देहाघा’ में काफी कुछ उसने ईमानदारी से कहना चाहा है, फिर भी उसकी यह स्वीकारावित दृष्टि व्यर्थ है।

‘पावंती और मेरे रिश्ते के बीच प्रेम कभी नहीं रहा। उसे एक ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत थी, जो उसे सिर में सितार लगाने का शौक दे सके.....’ मुझे भी एक ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत थी, जो मेरी बहुश्रियों का कायमो गवाह बन सके। ‘.....इसके अलावा एक बात और है। यह एक बात मैं नहीं कहूँगा। अपने को लोगों की निगाहों में इतने नीचे गिराने के साहस मुझमें एकदम नहीं है।’

(देहाया: पृष्ठ ३६)

साहस उर में नहीं था—यह सच है। इसीलिए वह बार-बार अपने प्रतीत से कटने की कोशिश करता रहा। वह चाहता रहा कि मविष्य की परिणामिक निन्तापो से वह भागना न हो। उसकी भयंकरता उसे असह्य जान पड़ती थी। इसीलिए उसने प्रतीत से कटते रह कर, मविष्य की विन्तापो से शील मुंद कर, भोग्य वर्तमान और एन्द्रिय प्रानन्द के गम में पड़े विगुल सत्य को खंडशः जीते रहना चाहा:

‘वैसे मैं मविष्य में किसी प्रकार की कोई प्राप्ति नहीं रखता हूँ, प्रतीत में भी नहीं। प्रतीत और मविष्य समानान्तर और समान-वर्ग काल खण्ड हैं,—इन दोनों को वर्तमान से विच्छिन्न करके ही मैं अपना वर्तमान निर्धारित करता हूँ। काल को विभाजित करता उचित स्वार्थ और उचित स्वाधीनता नहीं है।’

(शवयात्रा के बाद देहपुट्टि डायरी: लहर: मार्च, '६७)

मृत्यु से संघर्ष करते हुए, पटना अस्पताल में (शायद) दूसरे ऑपरेशन के बाद उसने ये पंक्तियाँ लिखीं। अपने खण्डित श्रुतमयों को विशिष्टता का ओढ़न ओढ़ते हुए उसने यह कहा। अन्तिम समय से कुछ पूर्व तक वह अपनी प्रान्तरिक निष्ठा को झुलता रहा। किन्तु जीवनतः-सन्दर्भों में इसी में उसकी कराह भी छुपी हुई नजर आती है।

‘किसी ने भ्रान्तक कुछ कहा और मेरी जिन्दगी की दास्तान गूँह हो गई और ‘भ्रान्तक’ रास्ता बन गया। मेरा रास्ता भ्रान्तकान का रास्ता है, भ्रान्तक का रास्ता है।’

(देहाया: पृष्ठ ७३)

यह ‘भ्रान्तक’ और ‘भ्रान्तकान’ का रास्ता गुण-बोध के सन्दर्भ में प्रामाणिकता तो प्रस्तुत करता है, जीवन की संश्लिष्टताओं, विषयों के संज्ञास को भोगने हुए मानव-मन की कारणात्मक विवशता तो चित्रित करता है; किन्तु इन कुण्ठित श्रुतियों को आधार नहीं देता, जीवनता नहीं देता। राजकमल अपने कथा-प्रसंगों के नायकों की भाँति स्वयं भी वैकल्पिक धरातल की बीज में प्रतिलिखण तक छटपटाता हुआ मर गया। यह मौल प्रामाणिक श्रुतियों या सञ्चल आत्मा की मौल नहीं, केवल वर्तमान की जीवन का प्रतिलिख और चरम सत्य मान लेने शीघ्र-उत्प्रेक्ष्य बनाव कर ओढ़ने के बहाने की मौल है। बहाना आधार नहीं देता, देता है मौल? राजकमल के जीवनगत श्रुतमय और उसकी मृत्यु इसी सत्य का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। नयी पीढ़ी को राजकमल ने जीवन और राजकमल के साहित्य ने एक निश्चित दिशा-संकेत

१४०। सामयिक विह्वलतात्मक प्रसिद्धिचित.....: मारतरलत मार्गव लहर

दिशा है। इसमें कोई दो राय नहीं। उसका जीवन एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग था और उसकी मृत्यु उस प्रयोग की प्रारम्भिक प्रसफलता।

प्रयोग उसे बहुत प्रिय थे। सच और मूढ के प्रयोग, वैदिकानों और ईमान-दारी के प्रयोग, उसने जीवन में भी किये और साहित्य में भी। इसीलिए मुझे लगता है कि उसके संपूर्ण साहित्य को उसके व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में रख कर देखना आवश्यक है। उसका व्यक्तित्व ही उसके साहित्य का निरूपण हो सकता है। अन्त्या उसकी प्रतिबद्धता और प्रामाणिकता पर प्रश्न-चिन्ह लगा रह सकता है।

उसके उपन्यासों में (सम्भवतः) एक ही उपन्यास ऐसा है, जो उसके व्यक्तित्व को प्रलग रखकर भी पढ़ा जा सकता है, सम्झा जा सकता है: ‘आह्र या आह्र नहीं था’। यह उपन्यास भी एक कथा-प्रयोग ही है। इस उपन्यास की श्रव तक विशेष चर्चा नहीं हुई। चर्चा उसने ‘मछली मरी हुई’ की करवानी चाही, इसीलिए लेखित्व समस्या को उसने प्रामाणिकता का केन्द्र बनाया। अपनी एक पुरानी कहानी के नायक निर्मल पदमावत को उठा कर उसने यह जाल बुना और मोड़ पर फँक दिया। मोड़, जाल के छिद्रों में से स्त्रियों की समलैंगिक यौन रुचियों के तमाशे देखती रही। और इस उपन्यास के माध्यम से शायद राजकमल ने और कुछ नहीं चाहा।

‘आह्र या आह्र नहीं था’ से भी उसने शायद बहुत कुछ नहीं चाहा। किन्तु इसमें उसका मन्तव्य वैसा कुछ नहीं था, जो ‘एक भ्रान्त एक बीमार’ या ‘मछली मरी हुई’ के माध्यम से स्पष्ट होता है। इसीलिए राजकमल इस उपन्यास में प्रायोगिक होकर भी बहुत संयत है। उसका यह कथा-प्रयोग उसके प्रायः सभी कथा-प्रयोगों की अपेक्षा मुझे विशिष्ट लगता है।

पटना की एक नयी बस्ती इस उपन्यास का आधार है। इस स्थल की ही इसका नायकत्व मिलता है। वैसे नायक कोई एक नहीं है। कमलनाथ, सच्चिदा, बादल, रायसाहब या बका, लखिता, सेडी नूर मुहम्मद, भरना, काली, चन्दन, बन्दना, कोई भी नायक-नायिका नहीं है। या, सभी नायक नायिकाएँ हैं। राजकमल की दृष्टि सभी पात्रों पर बराबर पड़ी है। सभी के भ्रान्त को उसने गहरे में जाकर टटोला है और फिर चित्रित किया है। वह एक घटना को लेता है और उसे ‘प्रोक्स’ करता है। यह घटना किसी क्रम में नहीं चलती, किन्तु उस स्थल-विशेष को और प्रसिद्धिचित बनती है। इस उपन्यास में उसका डीलगा रूपकात्मक है।

कुछ खास घटनाओं और श्रिकों को वह साधारण रूप में प्रस्तुत नहीं करता। काम की बीज पेश करके, बाकी सब कुछ फँक कर कथा प्रवाह नहीं

दिसम्बर-जनवरी '६८

१४८

बढ़ता। वह प्रत्येक वस्तु की 'डीटेल' में जाता है। यह 'डीटेल' प्रस्तुत करना इतना खूबसूरत है कि इससे बोरियत भी नहीं होती और जग्यास का प्रवाह भी कहीं मन्द नहीं होता।

रूपकात्मक डीटेल प्रकाश नहीं, सकारण है। क्योंकि यह कई स्थलों पर है। लगभग सभी प्रायों में। उदाहरण के लिए लेखक कुसुमपुर के सम्बन्ध में जानकारों देते समय उस वस्ती के सम्बन्ध में प्रसवार में छपे हुए प्रॉकड़े देना करता है:

‘प्रसवारों में छपे हुए प्रॉकड़े:

(कुसुमपुर के बारे में)

समय-सीमा : जनवरी १९६३ से जुलाई १९६३

घटनाएँ

संख्या

मकान बनाने या विजली फिट करने में

प्राकस्मिक दुर्घटना से मृत्यु

चोरी गये बालक-बालिकाओं की संख्या

प्राप्तमहत्या (पुरुष)

प्राप्तमहत्या (स्त्री)

चित्रों से छेड़छानी की घटनाएँ

बलात्कार (दर्ज रिपोर्ट के आधार पर)

(शहर या शहर नहीं था : पृष्ठ १५)

२४

२२

२

१५

७

इसके प्रतिरिक्त उसने यह प्रयोग जगह-जगह किया है। चन्द्रगावदना की फंस (१) पब्लिक शो में, (२) प्राइवेट शो में, (पृष्ठ २६), बीमा कम्पनी की नयी विडिओ का निजी दण्ड (पृष्ठ ३८), दस व्यक्तियों की लिस्ट (पृष्ठ ४१) डायलॉग दिलीप कुमार का (पृष्ठ ५५), माई बहन के बोड़े की एक फिलमी बातचीत का अंश (पृष्ठ ६१), अकों का सिफिसला (पृष्ठ ८१), विमानचन्द्र भा का व्योरा (पृष्ठ ९०) बंका के विवाह के लिए विज्ञापन (पृष्ठ १०१), बादल की बातचीत प्रिन्सी स्टाइन में (पृष्ठ १०२) चलती गाड़ी में तीन सखियों का वार्तालाप (पृष्ठ १२४), आदि।

इस रूपकात्मक उपन्यास की एक और विशेषता है—कथा-क्रम की संयोजना ना प्रभाव। विशेषता इसलिए कि कथा-क्रम का प्रभाव भी इसे उपन्यास बनाये रखने में बाधक सिद्ध नहीं होता है।

लेकिन फिर भी यह राजकमल की विशिष्ट रचना होते-होते रह गई। शायद इसीलिए कि इसके माध्यम से वह पाठकों का चोका नहीं सका। चौकाना या

१४२। सामाजिक विक्रान्तात्मक अभिव्यक्ति.... : भारत-रत्न भार्गव लहर

बनाना करना उनके साहित्य का प्रयोजन था। उनके साहित्य का भी प्रेर

उसके जीवन का भी।

‘प्यार धूमकेतु की तरह चमक कर बुझ जाने की सम्भावना हो, तब क्यों नहीं दूट लिया जाए? क्या होता है प्रेम? क्या होता है दाम्पत्य सुख? क्या होता है परिवार? क्या होता है समाज?

(नदी बहती थी : पृष्ठ २७)

घोर उसने समाज की मर्यादाएँ तोड़ीं। परिवार की सीमाएँ नहीं मानीं। दाम्पत्य सुख को शस्त्रीकारा। प्रेम की परिभाषाएँ बदलीं। घोर भक्त में, धूमकेतु की तरह चमक कर बुझ गया। तब कुछ तोड़ने की चेष्टा में खुद ही दूट गया। ●

बचाइये

देश की आर्थिक सुदृढ़ता के लिये भारत को मजबूत एवं आत्म-निर्भरता के लिये

सभी प्रकार की जमाओं (Deposits)

पर हमारी आकर्षक व्याज की दरें

बचत खाता (Savings Bank Account)—४% वार्षिक मिश्रित जमा (Mixed Deposits) - व्याज की दर समानानुसार केवल ५ रुपये से हमारी किसी भी १७६ शाखाओं में

आपना बचत खाता खोल सकते हैं।

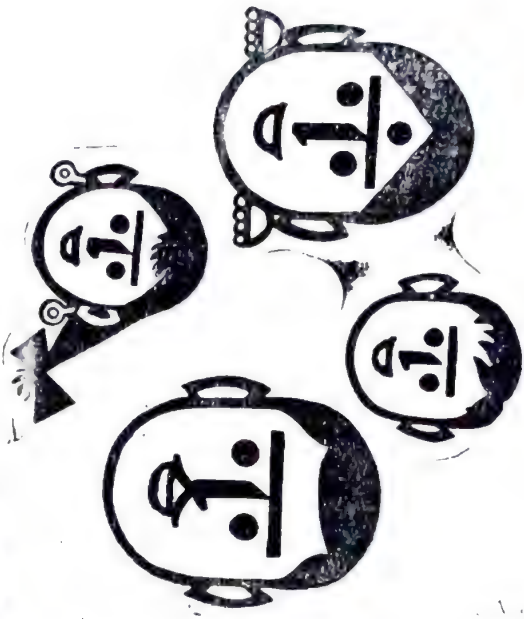
हर प्रकार का बैंकिंग व्यापार होता है। कृपया हमारे पास के ब्रांच एजेंट से सम्पर्क करें, जो अन्य जानकारीयाँ देगा

स्टेट बैंक ऑफ़ बीकानेर एण्ड जयपुर

(स्टेट बैंक ऑफ़ इण्डिया का महायक बैंक)

हैड ऑफिस : जयपुर

बस दो पा तीन बच्चे :
होते हैं घर में अच्छे



परिवार नियोजन केन्द्र की पहचान लाल तिकोण

क्या करना

परिवार नियोजन केन्द्र

‘एक अनार : एक बीमार’ :
अशेष कथा का विवश सत्य

प्रमत्त ओझा

राजकमल की रचनाओं में एक विशुद्धता, विखराव और सूत्रहीनता है। वे ‘ओरिएण्टल थ्रॉटल’ की तरह अपने चित्रों को काट-ताराश और मार्ज-विलार कर ‘अप्रतिम’ बनाने में विश्वास नहीं करते; वरन् उनके चित्रों में एक सहज प्रगल्भता है, जो उन्हें पिकासोई कला के निकट खड़ा कर देती है।

‘एक प्रनार : एक बीमार’ राजकमल चौधरी की चौबीस पृष्ठीय एक लम्बी कहानी है, जिसके लिए लेखक ने कहा है : ‘इतनी छोटी किताब को ‘उपन्यास’ का इतना बड़ा नाम देना, अञ्छा नहीं लगता है।’

कथाकार के शब्दों में प्रस्तुत कथा-रचना में ईश्वर और सोता के माध्यम से, इसमें कलकत्ता के समकालीन मध्यवर्गीय जीवन को यथार्थ विरोधाभासों में लिखने की कोशिश हुई है। ‘एक प्रनार : एक बीमार’ में ईश्वर और सोता के जीवन-खण्ड की एक छोटी-सी ‘बड़ी कहानी’ है। साधारण पात्र और सामान्य परिवेश की संक्षिप्त किन्तु जीवन्त संवेदना की गाथा।

जरी-रगत विचलताओं के सैकड़ों सन्दर्भ ऐसी कथा की रचना करते हैं, जिसका शेष-शेष पारम्परिक विश्वासों और धर्म हैं। जीवन-सूत्रों का उपहास उड़ाते हुए उसे एक नये प्रामाणिक श्रौत-कृतुभूत सत्य के निकट स्थापित करने का प्रयास करता है। आदमी और जानवर—दोनों के पारस्परिक प्रतारों की

प्राप्ति—वहाँ नाप्य प्रतीत होती है।

‘सोता’ और ‘बीमार’ ने प्रतीक युगीन विरोधाभासों की चिनीनी प्रक्रिया के बीच होकर गहरते हैं—उकी हुई रक्त-संज्ञा से अभिप्राय से प्रसन्न। प्रत्यक्ष-विरोध की अवस्था में ही व्यक्ति का प्रादुर्भाव होता है। कथाकार एक प्रनाम सत्य को स्वीकार करने की राह में है। उसके इस प्रान्त—बीमरस यथार्थ को सन्तुष्ट करने की खोज में ही आदमी का पवित्रता उन रंगते हुए बीटा से

दिसम्बर-जनवरी १९८८

१४५

प्रमाणित होती है, जो सीता के बेटी जिरम के प्रांगे पर फिसलते हैं। सोष्ठनियु देह के कोमल अंग मानवीय सम्बन्धों की पवित्रता या उदात्तता नहीं बिछाते, वरन् प्रेम की घाटियों की विह्वल और मारक बीमारियों के शिकार होते हैं। मयभीत साँप की फुण्डली से घिरी यह सच्चाई किसी को नहीं बरखाती।

मयावह निरंकुशता और निष्कियता के बोध से प्रस्त कथानायक ईश्वर का जीवन विरोधाभासों से भरा है। उसे कहीं समुलून और ठहराव नहीं मिलता। बिद्रुताएँ, भ्रान्तिरोध, विह्वल सम्बन्धों की नम्रता एवम् सामाजिक विघटन-कुछ नहीं होता है। ईश्वर को लागता है कि उसकी मर्जों से कहीं धारण कर लेती हैं। इसलिये प्रभ ईश्वर भी किसी की मर्जों से कुछ नहीं करता। मृगत का तमाशा देखता है। मजा नेता है।

ईश्वर और सीता की यह कथा समय-मापस नहीं है, इसीलिए शब्द-साधेय भी नहीं। 'यह ईश्वर, वही ईश्वर था, जिसने यह शहर, यह दुनिया बनायी थी, और सीता, वही सीता थी, जो क्षीर-सागर से अमृत-कुम्भ के साथ निकली गोशत ला कर सड़कों पर बदहवास चीखता है और उसके जर्जर अस्तित्व के सारे भ्रान्तिक संगठन बिखर जाते हैं।

सीता और ईश्वर के अस्तित्व की इस नयी विराट सीला का लोत महानगर है, जो कलकत्ता भी हो सकता है। महानगर की कुत्सित भावनाओं का यह सत्य इतना दुर्द्धर्ष और दुर्द्धर्म्य है कि पेशावर कलकत्ता के जीवन का बेहतरीन प्रतीक बन जाता है। पाखाने के लिए दिये गये डालडा के टिन में मेहतर मुराख कर देने हैं जिन्हे पानी के जाली दह पानी के जाल से आप शीघ्र बाहर निकलकर दूसरों को भौका दे सकें। यह पुराखों वाली बदसूरत चिन्त्यी उसी ईश्वर की देन है, जो रिजर्व बैंक की दीवारों पर चून दिया गया है या लक्ष्मीनारायण मन्दिर में। कहीं भी। कोई फर्क नहीं पड़ता है।

यह ईश्वर इतना निजीव है कि 'वकत के बहाव में' एक भारी टुकड़े की तरह रुक जाता है। वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ेगा। लेकिन बहाव का पानी घटित-हटित-केन्द्रित करता रहेगा, और वकत ऐसा आयेगा, जब किसी सिनधोवर की कर्मिणी रेतलों के काउटर, किसी पब्लिक लायरूम से वह अचानक गाय हो जायगा, हवा में घुल-मलकर गायद हो जायगा, जैसे खुली बैलूने फारफोरम लय हो जाता है।

१४६ : प्रवेश कथा का विवश सत्य : प्रसन्न भोका

नहर

धुएँ के इन्कनाबों के कारण ही दल प्रतापति, रावण, कम, दुर्गेशन से लेकर धुबो-भाषो-न्ते-नक की दुनिया प्रमी तक बहती है। आकाशवाणी से पंचवीय योजनाओं के बारे में नाटक और भीत पेश करने या जगलिन की लाश के मलिन की दीवार में उल्लाड़कर बोला नदी में बहा देने से कोई प्रायदा नहीं।

दस की शराव और पीच की ओरत, यही मंत्र कारण होता है। इसी फुट और नन वास्तविकता को कबाकार दो सन्दर्भों के दाय और तोखा बना जाता है—सोफिया लोरेन और चार्ली चपलिन !.....'स्यह फ्रेम में दुल की तरह जकड़ी हुई 'दू' रूपन की सोफिया लोरेन के कमरे के बाहर लोग सिर झुकाये, आँखों पर सकेद पट्टी बाँधे बेहद छामोत्र गुबुर जाते हैं और बाहरी वातावरण में एक आदमवाद अपने घरघराते पंखों में उसके पके हुए स्तन निचोड़ लेता है।'.....मातृ-सत्तारमक पशुता के अस्तित्व की व्याख्या ! और दूसरा सन्दर्भ : दुर्जेही और कर्मिणी के मिलन-बिन्दु पर झुलता हुआ 'लाइमसाइट' में चाली बेपर्जिन !

सीता की समय-बिहीन कथा में कहीं मुक्ति नहीं है, क्योंकि ईश्वर उसे बनक, वासि, विन्ध्याचल, रावण, अमरसिंह या कलकत्ता से कहीं मुक्त नहीं करता है।

राजकमल की यह रचना उनकी अल्प कथा-रचनाओं से कुछ अलग परातन पर अवस्थित है। यद्यपि विह्वल योन-सम्बन्धों का प्रयास 'एक अन्तर' एक बीमार का प्रमुख विषय है, फिर भी इससे इतर समाज और व्यक्ति की भ्रान्तिक परतों के निर्मम उद्घाटन के प्रति कथाकार की रचना-दृष्टि सम्पन्न रही है। यथार्थ के निर्मम उद्घाटन की इस प्रक्रिया में उसे 'अश्लील प्रसंगों' की नियोजना भी करनी पड़ी है। और परम्पराजीवी, तथाकथित पवित्रतावादियों और 'साहित्य में अश्लीलता' आरोपित करने वाली 'पुलिस मनोवृत्ति के लोगों' के लिए भूमिका में ही राजकमल की हिदायत है कि वे 'लोग यह किताब नहीं पढ़ें, उनकी जेबों के रचनात्मक संघटन की एक 'एक अन्तर' : एक बीमार के कथा-सूत्रों के रचनात्मक संघटन की इस वायिष्ठता यह भी है कि कर्मिणी सतह पर अश्लील-सौ प्रतीत होने वाली इस रचना में 'अश्लीलता' की कोई गूढ़ परतें सक्रिय हैं। उपन्यास, कहानी, कविता

प्रतीत होती देती है

१४७

दिसम्बर-जनवरी १९८८

जीवकान्त भा

साहित्य

222

मेरा ही नाम

चलो रे कवि, इस बार तुम्हो चलो भुलहा। मसान
खप्पड़ में भूँजा तुम्हो अपने प्राण।]

१९६६ की बीमारी से उबरने के बाद वे अपने पंथक गांव महिसी (बि०
सहरसा, बिहार) चले प्राये। गांव में रहते वाले इस कवि की तीन मनः
स्थितियों का विवरण उनके लिखे पत्रों से ज्ञात होता है।

पत्र १ : प्रियवर, भ्रान कोनों उपाय नहि पावि, गाम चल प्रायल छी,—
उग्रतारा अही ठाम छवि। मरि दशमी एतहि रहव। चम्पारोगक प्रकोप
किछु कम भेल अछि। गामक शान्त-स्वच्छ परिवेशमे भ्रानो Complications
घटल जाइत अछि। हम मात्र २१ बर्षक उमराल भ्रपन गाम प्रायल छी। तै
एहि ठाम बहु मोन लागि रहल अछि। गामक कातसँ कोसीक विराट 'बाँध'
जाइत अछि। ओहि पार अपार जलराशि, एहि पार हरिप्रर बरती। साँक
खन उग्रतारा-मन्दिर जाइत छी। शतरंज खेलत छी। माँग पिबाक इच्छा
करैत छी (पिबैत नहि छी)। भारो कतेक की करैक इच्छा करैत छी,—जेना,
कोनो श्राद्ध, बतहि, कारो, पियासल स्नोसँ प्रेम। एहि स्नोिक नाम भेल
उग्रतारा। सप्रेम, राजकमल २१-६-६६

[प्रियवर, इसरा कोई उपाय नहीं देखकर, गाँव चला प्राया हूँ—उग्रतारा
यही है। दशमी तक यही रहूँगा। चम्पारोग का प्रकोप कुछ पटा है। गाँव
के शान्त—स्वच्छ परिवेश में दूसरे Complications भी घटते जा रहे हैं।
..... मैं केवल इक्कीस सालों के बाद अपने गाँव प्राया हूँ। इसी से यहाँ
बहुत दिल लग रहा है। गाँव के किनारे से कोसी का विराट बाँध जाता
है। उस पार अपार जलराशि, इस पार हरी बरती। साँक में उग्रतारा-
मन्दिर जाता हूँ। शतरंज खेलता हूँ। माँग पीने की इच्छा करता हूँ
(पीता नहीं हूँ)। आँसू भी बहुत कुछ कान की इच्छा करता हूँ,—जैसे, प्रिय
भ्रान्धी, पायाल, काली, प्यासो स्नो। से प्रेम। इस स्नो का नाम हुआ चम्प-
तारा। सप्रेम, राजकमल २१-६-६६]

पत्र २ : प्रिय जीवकान्त, हम गामहि छी। बोले एक बेर कलकत्ता गेल
छलहुँ। एकटा दुबटना एहि मध्ये भेल। गत १० जनवरी
के स्वर्गवासी भेलाह। प्राब घर-परिवारक प्रसन्नता रहेग, और
पड़ल अछि। तीन टा भ्रान्जक भेल। गेल
भ्रागाँ बर्ष करहर पड़ल। पितृ-श्राद्ध मे की भेल। गेल
मुदा, एहिसन समस्पास हम विचलित भेल। गेल
छी। हम भ्रपन मुक्ति आ स्वच्छता के रास्ता पर चलैत अछि।

१५२। दुर्गिचयों में किरणमाला की खोज..... जीवकान्त का नहर

भ्रपन दाय या दायित्व के संभारि नेव,—ई हमरा विषयस अछि।
प्राया अछि, प्रहरी ग्राम—ग्रामानन्द (प्रा, की ग्राम्य-ग्रामानन्द ?) मे तल्लीन
छी। एहेन इजोरिया राति—भाइए, प्रसी प्रणिमा पीक—एहेन कबई माछ—
एहेन 'जुभान' जोरार गोंडि-कन्या—मनुष्य के मुक्तिक लेल भ्रान किछु
नहि चाहै। हमरा लेखने देग मे प्रकाल पड़ल अछि, प्रा ने हम कोनों
हुलक श्राद्ध में हबल छी। उम्मेदवार एम. एल. ए., एम. पी. आदिक
जोय, मोटर, साइकिल प्रतिदिन दलान लग ठाढ़ होइत अछि। प्रतिदिन
हम पहिने सँ बेसी स्वस्थ आ शान्त भेल जाइत छी। गाम सँ भ्राब भट्ट
'लगनि' नय गेल अछि। कवि राजकमल भ्राब सभ दिन गामहि रहलाह।
एक बेर अही हमरा गाम भ्राड..... सस्नेह, राजकमल २७-१-६७

[प्रिय जीवकान्त, मैं गाँव में ही हूँ। बीच में एक बार कलकत्ता गया था।
एक दुर्घटना इस बीच में हो गई कि मेरे पिता गत १० जनवरी को स्वर्गवासो
हो गए। प्राब घर-परिवार का सारा बोझ फिर पर आ गया है। तीन
भ्रानुज कलेज में पढ़ रहे हैं; एक बहन का विवाह भ्राने सान करना हो
पड़ेगा। पितृ-श्राद्ध में दस हजार खया खर्च करना पड़ा। भ्रान, इन सभी
समस्याओं से मैं विचलित भ्रयवा कि करोमि गेविन्द नहीं हूँ। मैं भ्रानो
मुक्ति और स्वच्छदता को सुरक्षित रखता हुआ परिवार के प्रति अपने दाय
और दायित्व को संभाल लूँगा,—यह मेरा विश्वास है। प्राया है, भ्राय
ग्राम-ग्रामानन्द (भ्रयवा ग्राम्य-ग्रामानन्द) में तल्लीन है। ऐसी चाँदनी रात—
भ्राज ही पूस की पूर्णिमा है, ऐसी कबई मछली—ऐसी जवान मजबूत
मछेरिन..... भ्रादमी को मुक्ति के लिये और कुछ भी नहीं चाहिये। मेरे लिये
न देश में प्रकाल पड़ा है, और न मैं किसी दुःख के भ्रन्धरे में डूबा हुआ हूँ।
उम्मेदवार एम. एल. ए., एम. पी. लोगों की जोय, मोटर, साइकिल प्रति-
दिन दरवाजे के सामने लड़के होते हैं। गाँव से भ्रान भट्ट 'लगनि' हो गई
है। कवि राजकमल भ्राब सदा गाँव ही है। एक बार प्राय मेरे, गाँव
भाईये..... सस्नेह, राजकमल, २७-१-६७

पत्र ३ : प्रिय जीव०, कलेज दलसँ कोनों सभार नहि। कारण ?..... हम केक
दिवससँ पटना छी। च गाम घनिष्ठ भ्राब गहर, बजार, 'मेड-भ्रय'
किछु नीक नहि लगैत अछि। नीक लगैत प्रादि
(१) निः
....., सिरि
सत ए
जो अछि,
विसरि जायव, मोन रहि जायत कबई माछ
नहि, प्रा समुद्र। कारी, शान्त, मुदा,
दिसम्बर-जन २०१६

से पटना में है। प्रब गीत लौट आऊंगा। प्रब जहर, बालार, 'गेड-प्रप' प्रौत्त, रेस्तरां, पुराने मित्र, कुछ भी मन्त्रे नहीं लगते हैं। प्रच्छा लगता है एकाल। प्रच्छा लगता है भयंकर। प्रच्छा लगता है, किसी शीतल बनी छवि-बाली स्त्री गाय को (ध्वनि रति-विपरीत नहीं है) छाया में बंठा हुआ, और सब कुछ भूल जाना.....भूल आऊंगा, मैं सब कुछ भूल जाऊंगा। याद रहे जायेगी कबई भङ्गनी जैसे एक जोड़ी प्रान्ति, उज्जली-नीली प्रान्ति, और समुद्र। काला, शान्त, मरा हुआ एक आदर प्रान्त समुद्र.....राजकमल २७-४-६७

है। इसकी वषों के बात गांव जाने पर नये जीवन का उल्लास दिखाई देता है। उसके बाद निम्नोदित और भोग...। फिर, कुछ ही दिनों में पकान और उल्लास की कमी अपना फन पटकने लगती है और शुल्क का उल्लास और पक्ष का संकल्प डोल जाता है और एकल और शक्ति की ईश्वर सबसे मुख्य हो जाती है। स्पष्ट कहें, तो देहावसान की तैयारी शुरू हो जाती है। प्रार्थन के अन्तिम सप्ताह तक उमरा हुआ प्रवसाद बहुत पना हो जाता है। और १७ मई को वे पटना में बीमार हो जाते हैं। बीमारी में ही वे महिमा लीट जाते हैं और अन्त में फिर पटना। अस्पताल में भर्ती होने पर वे अपने एक मित्र से कहते हैं : 'मैं इस बार बच्चा नहीं उपाध्याय, मैं नाराज हो गई हूँ.....'।

नाथाला साहित्य में जब इस काल और कथाकार का मूलयत्न करना चाहते हैं तो हमें मंथिली के इतिहास के पन्नों में भाँकने की जरूरत महसूस होती है।

मध्यम कालिकावती ने मंथिली के इतिहास में सन् ४८ को एक विविधता से बीसवीं सदी को दो खण्डों में प्रकाशित कर दिया है। स्वतन्त्रता से पहले के मंथिली साहित्य में स्पष्टतः विद्यापाति, गोविन्ददास प्रभृति गीतकारों का बहुत व्यापक प्रभाव था। वैसे बीसवीं सदी के आस-पास कवि चन्द्रा भाने लीक से हटकर लिखने की कोशिश की थी श्रद्धा। ये दशक में कवि भुवन ने भी एक नये प्रकार के कथ्य की ओर संलग्न हुए थे। वे कहानी में साहित्य के प्रभाव से वासी झुझड़वाए में ही रह रहे थे। और साहित्य में भी एक नया स्तर बन चुके थे। (हिन्दी उपनिषद्)

प्रकाशित हुई थी) मंथिली में 'धानी' (हिन्दी उपनिषद्) जमीनकी से आपन बली और कथ्य की एक नई पहचान।

१५४ । दुर्गन्धियों में किरणमाला की खोज.... : जीवकान्त भा
लहर

नेकर प्राये । यात्रो के घाने म प्रादेश इतना नीब था कि चिखने सारे पील पले जो दानियो पर पड़े हुए थे, एकबारगी हड़हड़ा कर (दमर के साथ नहीं) गिर गये और दिगाधो में छो गये । कवि और कथाकार यात्रो ने शायदप्रतिम के साथ मैथिली को एक नई प्रामाण्यवना से सुमजित किया । उन्होंने पहले-पहल गीराणिक प्रतीकों श्रेो नई प्रामाण्यवना के लिये उठाया । यात्रो के बाद उनके साथ हुए कवि सोमदेव और राजकमल । राजकमल की पहली कहानियाँ '४४', '४५' के प्राम-प्रास 'बंदेही' में छपी थीं । 'तलका पाग' कहानी को पढ़कर मैथिली का प्राग्निवाद्य पाठक चौका था, शब्धु हूया था और प्रार्तकित हुआ था । लोग राजकमल की शक्ति से स्तम्भित तो हो गये थे, मगर उसे शायत्ती-कुल करने के लिये प्रस्तुत नहीं थे । सन् १९५६ में राजकमल का पहला काव्य-संकलन 'स्वरागंवा' के नाम से निकला था । इसे प्रान्तेवकों ने कहा था : 'स्वरागंवा' गृहद्वार प्रदि (बदल करती है) ।' संघर्ष छिड़ा था—परिक्रमाओं में, कवि-सम्मेलन के मंचों पर उग्र विवाद छिड़ा था । मगर, ये सारी प्रतिक्रियाएँ मरती गई और मैथिली की नई कविता समृद्ध होती गई । उसके बाद घोरेंद्र, किमुन, भुवनेश्वर, रमानन्द रेणु, कीर्तिनारायण, कितने कवि प्राये और मैथिली का नया साहित्य विहार में बहती हुई गंगा की बारा के समान परिपुष्ट हो गया । राजकमल ने जिस संघर्ष को 'गोता' था, उसके सामने उन्होंने सिर नहीं झुकाया, लोग सुनें या कितने लोग न सुनें, चाहे कितने लोग उसे परसन्द करें, चाहे गालियाँ दें । मगर, उन्हें जो कुछ कहना था, झप्रतिहत कहते गये । उन्होंने अपनी सैकड़ों कहानियों, एक उपन्यास (दूसरा उपन्यास शायद लिख रहे थे) और अनेक-सौ कविताओं में अपनी बात कही है, और अस्खलित प्राम-विश्वास के साथ कही है । उनके द्वारा छाना हुआ और उभारा हुआ प्रदेश

मंथिलो ज्ञानया साहित्य—स्वतन्त्रता के अन्तर्गत का साहित्य, राजकमल का प्रभाव और उसका सह्यामी साहित्य है। राजकमल के खिलते और बिखर जाने के बाद वर्षों के इस युग की कल्पना राजकमल के बिना असंभव है। भवतः यह युग 'राजकमल' के मंथिलो-साहित्य पर प्रयोज्य है।

मंथिलो की अभिव्यञ्जना उनसे तमबं हुई है।

मंथिलो-स का अर्थ प्रभाव है, मना उसके अन्तर्गत की प्रत्येक वृत्ति में उसकी युगव (स्तर-गं) के अन्तर्गत और प्रभावित होना होता है।

दिसम्बर-जनवरी १९५५

कहने की

आवश्यकता

नहीं

कलकत्ता में जैसे

विकटोरिया मेमोरियल

वैसे ही

गणपति मूर्ति

पहचानने

वाले

व्यक्ति

भी बनता

हो

नकर

पाने

है



वरजों के शोभनो के कि

तमल

सुल

सकता

लि०



यह इंजीनियर बनना चाहता है। क्या पात्र
इसकी याकांक्षा पूरी करे ? पढ़ाव +
पढ़ाव नेमान के बें सेविस लागा कोल
कर पात्र बकर पूरी कर सकेंगे।
पात्र ही लागा कोलकर इसके लिए बचत
करना शुरू करें। इसके चलते/रिकरिंग
डिपेंडेंट स्कीम की हानि को प्राकट्यक बलों
की भी जानकारी हासिल करें।

पंजाब नेशनल बैंक

में इंजीनियर
बनना
चाहता है



मैथिली-साहित्य में राजकमल

वीरेन्द्र

एक अतीत, जो आज इतिहास बन गया है, मेरे समक्ष कौब रहा है। '५१
से '५५ तक का वह काल मैथिली-साहित्य में 'वैदेही-युग' के नाम से पुकारा
जाय तो अत्युक्ति न होगी। 'वैदेही'—मैथिली की एक मासिक पत्रिका, जिसे
साथ में मैथिली की नये भाव-बोध से परिचित कराने की दृढ़ इच्छा लेकर
प्राने वाले सात नौबवान एक होकर भा जुटे थे।—ललित, वीरेन्द्र, सोमदेव,
राजकमल, मायानन्द, योगिराज तथा हंसराज। इनमें से प्रायः प्रत्येक को
महान् साहित्यकार 'यात्री' (तागाजुर्न) का प्राशोर्वाद प्राप्त हुआ था। मैथिली
में जिस तरह की चीज 'यात्री' देखा चाहते थे, वैसे ही चीज उन्हें इनके पास
'वैदेही' के पृष्ठों में सर्वप्रथम ब्रह्मानी के क्षेत्र में नये प्रयोग हुए। विचार और
शिल्प दोनों दृष्टि से ये कहानियाँ पूर्ववर्ती कहानी लेखकों की कहानियों से
पूरातया भिन्न थीं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् मली निराशा और निरन्तर
बढ़ती-बढ़ती से उत्पन्न आर्थिक विषमता एक ओर थी। बेकारी, राजनैतिक
डूँटन और जमींदारी—उन्मूलन के उत्पन्न विखराव दूसरी ओर। यह एक
वर्ष है कि इससे पूर्व मिथिला के आन्दोलनकार एक-दो अपवाद को छोड़,

जोमा... पर भ्रम स्थिति दूसरी थी। नये लोगों के
समक्ष नये... पूल सकल... की को एक विराट-वर्ग
या तो शहर की... में ही कुंठाग्रस्त जिन्दगी व्यतीत
करते लगे। नयी... प्रब... गामती देश प्रदत्त चक्षु से मुक्त थी और
जिन्दगी का एक... और नंगा-य उनके हृक्ष नाच रहा था। यही
दिसम्बर-जनवरी '६८

कारण है कि अपने इस नये भाव-जीवन को अभिव्यक्ति देने के हेतु ऐसे नये मंथिली-साहित्यकारों ने अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से पूर्णतया भिन्न-मी और मूलोच्चता—प्रत्येक क्षेत्र में। यह भी एक सत्य है कि अपने पूर्ववर्तियों में मात्र 'यात्री' से ये मिलते-जुलते से लगते हैं, और किसी से नहीं।

'बंदेही' के पृष्ठों में कसबाई-जीवन से सम्बद्ध एवं नये मिल से युक्त कहानियाँ लेकर सबसे पहले 'ललित' श्राव्ये। 'रमजानी', 'प्रधानिन्द', 'शोचरालोड' से पूर्णतया भिन्न हैं। 'ललित' के पश्चात् दृष्टते हुए ग्राम्य-जीवन से सम्बद्ध 'वीरेन्द्र' की कहानियाँ प्रकाशित हुईं। 'सम्य-लोक', 'मीष', 'बंदी', 'एक सदस्य', 'युगरक वाप' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'वीरेन्द्र' के पश्चात् 'सोमदेव' की नियाँ प्रकाशित हुईं। और तब श्राव्ये राजकमल। राजकमल चौधरी नहीं, मणीन्द्र राजकमल—की पहली मंथिली-कहानी 'बंदेही' में प्रवृत्त १५४ के दोस्त को पाकर। 'ललका पाग', 'कुलपरासबाली', 'कनरदास' जैसी कहानियों के द्वारा राजकमल ने मंथिली की नई कहानी को बल दिया। हंसराज, योमि-राज और मायानन्द ने भी अनेकानेक कहानियों के द्वारा इस कम को पुष्ट किया। इन कहानीकारों को प्रारम्भ में कुछ भ्रमविधाओं का सामना करना पड़ा, पर अभी जिन्योगी जीने वाले पाठकों के एक विशाल-वर्ग ने इनका स्वागत किया। कहानीकारों ने इनकी प्रणाली को अपनाकर उसे योगदान दिया। पीछे चलकर 'बंदेही' की स्थिति विगड़ गई और तब 'मिथिला-वर्धन' एवं 'मिथिला-मिहिर' ने मंथिली की नई कहानी को प्रोत्साहन प्रदान किया तथा इस रूप को बनाये रखा। 'मिथिला-मिहिर' के कथा-वर्ग इसके प्रमाण हैं। राजकमल की 'माछा', 'बड़ी', 'माहुर', 'बुल' और 'संभक्त गार्ध' जैसी कहानियाँ 'मिथिला-मिहिर' में ही प्रकाशित हुईं।

जहाँ तक राजकमल का प्रश्न है, उन्होंने मंथिली में महत्वपूर्ण सहयोग किया। कविता के क्षेत्र में 'यात्री' (नागाजु), 'सदस्य' (नागाजु) और 'सोमदेव' चिकित्सित करते रहे और प्रवृत्त ने हुए 'दुर्गा-इकल' जैसी कविताएँ लिखते रहे। पीछे लकर राजकमल, हंसराज और वीरेन्द्र के साथ १६०। मंथिली साहित्य में राजकमल : वीरेन्द्र लहर

गीतकार मायानन्द ने भी इस दिशा में काम किया और मंथिली-कविता के क्षेत्र में जो एक नया परिवर्तन दृष्टिलोचन होने लगा। पर इस प्रकार में राजकमल ने एक महत्वपूर्ण काम किया। उनकी नई मंथिली-कविताओं का संकलन 'स्वराज्य' के नाम से १५८ में प्रकाशित हुआ। इस सततकर्म-संकलन ने मंथिली नई कविता के दान्तेलन को बल प्रदान किया था। 'स्वराज्य' का प्रकाशनोत्तराल मंथिली पत्रिकाओं में परम्परावादीयों एवं नये कवियों का सासा कविता-मुद्र चला था; पर वीरे-वीरे मंथिली की नई-कविता ने अपना स्थान बना लिया और आज इसका ही बोलबाला है। पर राजकमल मंथिली नई कविता के प्रथम प्रवक्ता कहे जा सकते हैं, प्रवक्ता नहीं। प्रत्युत हिन्दी क्षेत्र में जब उनकी कविताएँ लोगों को चौंका रही थीं, मंथिली में तब तक वंसी कविताएँ सहज रूप में ग्रहीत हो चुकी थीं और सोमदेव, हंसराज, वीरेन्द्र, गायानन्द आदि के प्रतिरिक्त पन्नीसों कवि ऐसी ही कविताओं का सूजन कर हे थे, जो भ्रमुभूत तथ्यों को सहज अभिव्यक्ति दे रही थीं। तथ्यातः वे नई कविता के प्रबल पक्षधर थे। तथा 'महाजन, हमरा गाम थिक पुरबा बसाल पछवा बसाल', जैसी कविताओं के लिये मंथिली-साहित्य में वे सदा स्मरण किये जायेंगे। इस प्रसंग में 'मंथिली-मिहिर' में प्रकाशित स्वयं राजकमल का निबन्ध 'मंथिली कविता या हमरा लोकनि' अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

कविता और कहानी के श्रुतिरिक्त उपन्यास की दिशा में भी राजकमल ने अपने साधियों के साथ मिलकर काम किया था। मंथिली में अब तक उनके तीन उपन्यास समल आ चुके हैं। अन्यान्य उपन्यास हिन्दी में छपे। अपने तीन मंथिली उपन्यासों (पाण्डर-कुल, आन्दोलन, आदि-कथा) के द्वारा राजकमल ने अपने मित्रों—वीरेन्द्र (भोक्का), ललित (पृथ्वी-पुत्र), सोमदेव (पानोदाड, ब्रह्मविद्या) आदि का साथ दिया और मंथिली उपन्यास के क्षेत्र में भी नवीनता लाने की चेष्टा की।

कुल मिलाकर १०० कहानियाँ, ५०० कविताएँ, ३ उपन्यास, कुछ एकान्तों एवं रेडियो-लेखक तथा चन्द्र आलोचनात्मक निबन्ध उन्होंने मंथिली में प्रकाशित कराये थे। वे मंथिली की नई छेड़ के प्रौढ लेखकों में माने जाते थे। अपनी मातृभाषा के प्रति उनका हीरो निष्ठा थी। जेटी की तलाश में जहाँ भी गये हों, पर मंथिली की भा-बुद्धि में वे सदा सहयोग देते रहे।

मंथिली एक सामाजिक-भूखला की महत्वपूर्ण कड़ी थे। मंथिली क्षेत्र में प्रवृत्त मंथिली के इस मुखिल-बोध को सदा लहर

दिसम्बर-जनवरी

"काला डोरिया कुंडे नाल अडिया इए."

कि छोटा देवरा भाभी नाल लड़िया इए"

प्राण मेहरो, बल व्याह मोर परसो डोरो। माता-पिता की लाइसी अपने समुगल चलो जाएगी। बहा जान बह सुख-शान्ति में रहे, यही मा-बाप की कामना है। उस के सुख के दिन के लिए उन्होंने बेटी के जन्म के बाद जो बीमा पालिसी ली थी, उसी से प्राप्त रकम प्राण के दिन के खर्च पूरे करने में सहायता दे रही है।

बेटी के व्याह के लिये विवाह पालिसी ली जा सकती है, जो इस बुझी पर होने वाले खर्चों के लिये धन जुटाने की चिन्ता से माता-पिता को मुक्त रखेगी। नजदीक के बीमा एजेंट से पूरी जानकारी प्राप्त कीजिये।



जीवन बीमा सुरक्षा का बेजोड़ साधन है



NZL 67

२६२।

सहर

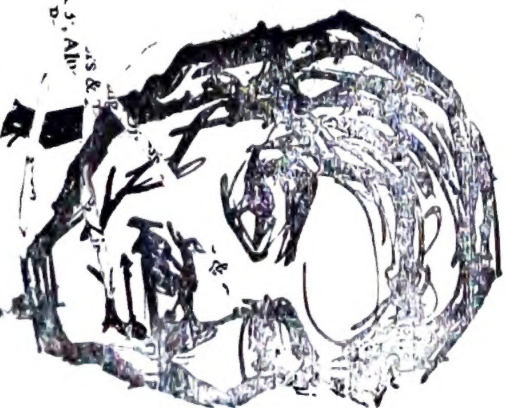
इनसे मिलिये। आप एक फ्रेस्टरी में 'एक्सिडेंट फोरमेन' हैं। इन्होंने अपना जीवन 'लेबोरेटरी एक्सिडेंट' के रूप में शुरू किया था, और सात साल के प्ररसे में ही आज इस पद पर पहुँच गये। इनकी सफलता का रहस्य उन्हीं के शब्दों में सुनिये—'काम तो सभी करते हैं। लेकिन मैंने कुछ ज्यादा जिम्मेदारियों के काम हाथ में लिये और बड़ी समझूँ और मेहनत से उन्हें पूरा किया। घर की तरफ से मैं परेशान नहीं रहा। मैंने अपने साथियों को देखा। उनके लम्बे चौड़े परिचार हैं। उनका सारा ध्यान और समझूँ उनके घर की आये दिन की परेशानियों में ही लग जाती है। मैंने इसी

बात पर ध्यान दिया। मेरे दो ही बच्चे हैं, जिन्हें मैं अच्छी से अच्छी शिक्षा देना चाहता हूँ। मेरा छोटा सा परिवार सुखी है।"



ये खुश हैं

और आप ?



0470 67/184

प्रगतिशील

अजमेर

सं०

विवरण

इकाई

वस्तु-विषय

१९५०-५१ १९५५-५६

१ पशुपालन

पशु प्रोबेशन एवं चिकित्सालय	संख्या	१७ (१९५७-५८) २२
पशुवन	हजार संख्या	८७३ १६२१
कुक्कुट	"	१२ १७

२ सहकारिता

सहकारिता	संख्या	११८६ १७२७ (१९६४-६५)
सदस्यता	हजार संख्या	४६.८७ १०.१६ (६४-६५)
कार्यशील पूंजी	हजार रुपये	११३.८२ २४४७६.७६
हिस्सा पूंजी	"	१३८६ ५२७१.८२
अन्तर्हित ग्रामीण परिवार	प्रतिशत	१५ (५५-५६) ४१
अन्तर्हित गांव	"	६५ (५५-५६) ७६

३ सामुदायिक विकास

विकास खण्ड	संख्या	१ (१९५२-५३) ८
जनसंख्या	हजार व्यक्ति	६० (१९५२-५३) ६११
गांव	संख्या	१०६ (१९५२-५३) ६७०
क्षेत्रफल वर्ग कि० मी०		१२७६ (१९५२-५३) ८०८५
ग्राम पंचायत	संख्या	— ७७३
शिक्षा	प्रतिशत	— ७२ (१९५१) ७५
साक्षरता	संख्या	— ८६५
कालेज	संख्या	— १३
हार्ड/हायर सेकण्डरी	संख्या	— ४७ (१९६३-६४)

१९५४

लहर

सं०

विवरण

इकाई

वस्तु-विषय

१९५०-५१ १९५५-५६

प्रिन्टिंग स्कूल

संख्या

७७ (१९५६-५७) ६३

प्राइमरी स्कूल

"

१००६ (१९५६-५७) ८१०

मध्यमक

"

४७७३ (१९५६-५७) ५७८०

बाल

"

१०२६०४ (१९५६-५७) १३६४७४

गॉली-टेकनिक

"

१ (१९६५-६६)

५ उद्योग

पंजीकृत चारू फॅक्ट्रियां

संख्या

७२ १६५ (६६-६७)

६ सड़कें

पक्की सड़कें

कि. मी.

१६१ १२२५

कच्ची सड़कें

"

५४१ ३४६

मोटर गाड़ियां

संख्या

२४१६ ३००३

७ चिकित्सा एवं स्वास्थ्य

एलोपैथिक डिस्पेंसियां

संख्या

२६ ३१

एवं भस्माल

"

१०४७ (१९६५)

रोगी बेदाएं

"

१०४७ (१९६५)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

६१ (१९६३-६४)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

प्राथमिक भस्माल एवं

डिस्पेंसियां

१ (१९६५-६६)

राजस्थान

विदेशों को माल भेजता है

नाम वस्तु

जहाँ भेजी जाती है

१. बकरी के बालों का सामान ईराक, कुवैत, तथा अन्य अरब देश।

२. हाथों की बुड़ियां तथा अन्य शृंगार का माल नाईजीरिया, तंगानिका, और जर्मनी।

३. खिलौने और घर की सजावट का सामान अमेरिका, ब्रिटेन, अफगानिस्तान, नाईजीरिया।

४. पी.पी.सी. ओटोकेबल्स और हलके पुर्जे ईरान, कुवैत और इराक

५. रस्से गन तथा कृषि का अन्य सामान वियतनाम और नेपाल।

६. विदेशी मुद्रा अर्जित करने में देश के साथ सपना हाथ बंटे, गद्दा है। राजस्थान

७. उद्योग एवं पैदावार बनाने में आपका सहयोग वांछनीय है।

(राजस्थान सरकार द्वारा)

With best compliments from :
Rajasthan Spg. & Wvg. Mills Ltd

Makers of :

**BEST
QUALITY
YARN**

Phone : 34.0043/5

14/1B, EZRA ST.
CALCUTTA-1

Phone : 421/423

Mills :
BHILWARA
(Rajasthan)

Gram : Rajpiper

The Indian Smelting & Refining Co. Ltd.

Mg. Agents : Birla Bombay Pvt. Ltd.

Regd. Office : Bombay-Agra Road, Bhandup, Bombay-78

NON-FERROUS UNIT

Bhandup, Bombay 78
Cable : "LUCRY" Bhandup
Phone : 5-1549 & 581978

FERROUS UNIT :

Panchpakhadi, Thana,
Cable MALLEABLE-THANA
Phone : 592152/592109

1. NON-FERROUS UNIT :

Cold Rolling Division :
Cold Rolled Industrial quality Brass & Copper
Sheathings, Strips & Coils.
Hot Rolling Division :
Commercial Quality Brass & Copper sheets & plates
Alloying & Casting Division :
Antifriction Bearing Metals, Gunmetals & Bronzes
Brazing Solders & Tinning Solders, Zinc Castings Alloys,
ISMMAK 3, All other Special Steel

• युवालेखन और मुक्तचिन्तन की व्यवस्थित प्रतियोगिता के लिए एक वार्षिक पंच • परम्परा की प्रत्याशाएँ से प्रलप, समय और संवेदना में से उभरते निरावृत्त वर्तमान का दृढ़ता और जुड़ता चित्र • प्राधुनिकतम समानान्तर चिन्तनवाली रचना, जीलना की स्पष्ट पल्लवता का अनुष्ठान • सभी युवा कथाकार, कवि, विचारक, समीक्षक और कलाकार एक ही संकलन में—

• वर्ष में ३ अंक बाइण्डर के रूप में प्रकाशित होंगे। प्रत्येक बाइण्डर में ३-३ संकलन होंगे—कविता, कहानी और मुक्तचिन्तन के। ३ अकों में से २ हिन्दी में तथा १ इंग्लिश में प्रकाशित होगा। • मुहूर्त अंक— जनवरी : प्रवेश। दूसरा अंक—मई : अग्रत। त्रिमासिक सदस्यता सितम्बर : दिसम्बर। [वार्षिक सदस्यता : १५ रुपये। विशेष सदस्यता : स्वच्छ से। 'अविश' की पुस्तक प्रति या स्टल्स पर विक्रय या एक से अधिक वर्ष और प्राजीवन सदस्यता के लिए कृपया समा करें। साथ ही विज्ञापन, प्रांट तथा प्रकाशित रचनाएँ हमारे लिए अनुपयोगी हैं। 'अविश' की केवल १००० प्रतियाँ ही प्रकाशित होंगी। अतः सीमित सदस्यता में आप आना चाहें तो अग्रिम स्वागत है।]

एक प्रत्यावसायिक प्रयास

मुक्तचिन्तन
और
युवालेखन का
संयोजन
रमेश बशी

आवृत्ति